देश दर्शन

पूर्ण संख्या—४६



अन्वेषक-दर्शन—३

के

कुछ प्रसिद्ध लेख

भूगोल कार्यालय — प्रयाग

देश दर्शन

हूँ कि वे हमारे आश्रित जनों की देख भाल करें। यदि मैं जीवित रहता तो मैं वह साहस, सहन शक्ति, वह कहानी सुनाता जो हर एक अंग्रेज के हृदय को दङ्ग कर देती यह अधूरा लेख और हमारे मृतक शरीर उस कहानी को अवश्य सुनायेंगे। लेकिन अवश्य ही निश्चय पूर्वक एक विशाल और धनी देश जैसा हमारा देश है हमारे आश्रित जनों का भली भाँति पोषण करेगा।

आर स्काट मार्च २५, १९१२

जुलाई, १९४३] **देश-दर्शन** [श्रावण २०००

(पुस्तकाकार सचित्र मासिक)

वर्ष ४] अन्वेषक-दर्शन-३ { संख्या २
पूर्ण संख्या ४२

सम्पादक

पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०

प्रकाशक

भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद

Annual Subs.	Rs. 4/-	वार्षिक मूल्य	४)
Foreign	Rs. 6/-	विदेश में	६)
This copy	As. -/6/-	इस प्रति का	।=)

विषय-सूची

अन्वेषक-दर्शन

तृतीय खण्ड

एवरेस्ट पर्वत की चढ़ाई

अब से प्राय: १०० वर्ष पहले हिमालय के पूर्वी भाग की पैमायश हो रही थी। पैमायश करनेवाली टोली हिमालय की ऊंची चोटी से १५० मील दूर पड़ाव डाले थी। यह टोली कुछ भागों का सचमुच नापती थी। कुछ दुर्गम भागों में वह रेखा गणित के नियमों से काम लेती थी। रेखा गणित के कुछ नियमों से नदी को बिना पार किये उसकी चौड़ाई निकाल लेते हैं। पेड़ पर बिना चढ़े हुये उसकी उंचाई जानी जा सकती है। तारों की उंचाई भी इन्हीं नियमों से निकाली जाती है। इन्हीं, नियमों के अनुसार एक हिन्दुस्तानी ने हिमालय के इस भाग की एक चोटी की उंचाई २९००० फुट निकाली। यह जानकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि उसने संसार की सब से अधिक ऊँची चोटी का पता लगाया है। उस समय हिन्दुस्तान का सर्वेयर जनरल कर्नल एवरेस्ट था। उसी के सम्मानार्थ हिमालय (संसार) की सब से अधिक ऊँची चोटी का नाम माउंट एवरेस्ट (चोटी)

रक्खा गया। बहुत समय तक एवरेस्ट के पड़ोस का ही पता न लग सका। एवरेस्ट की चोटी पर पहुंचना बड़ा कठिन कार्य था।

१९२१ में इंगलैंड की रायलज्याग्राफिकल सोसायटी और अल्पायन क्लब ने एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने के लिये एक मंडली तयार की।

एवरेस्ट की चढ़ाई उत्तर में तिब्बत और दक्षिण में नैपाल की ओर से हो सकती थी। तिब्बत के लामा लोग पूजा करने के लिये एवरेस्ट के ढालों पर काफी दूर तक चढ़ जाया करते हैं। अभी तक योरुप के यात्रियों को अधिक से अधिक २४५०० फुट तक चढ़ने का अनुभव था। इसलिये एवरेस्ट की २९१४१ फुट (नई नाप के अनुसार) एक दम नई थी। तिब्बत की ओर से चढ़ना कुछ अधिक सुगम है क्योंकि उधर मानसूनी हवाओं का इतना ज़ोर नहीं होता है। चढ़ाई का काम मानसूनी वर्षा के आरम्भ होने के पहले ही पूरा हो जाना चाहिये। बिकट शीत काल में चढ़ाई का काम आरम्भ भी नहीं हो सकता था। अतः एवरेस्ट की चोटी पर पहुंचने और उतरने के लिये अनुकूल समय

अन्वेषक-दर्शन

शीतकाल के समाप्त होने और वर्षा आरम्भ होने का ही है। संसार की सब से ऊँची चोटी पर इतने थोड़े समय में चढ़कर उतर आना एक बड़ी भारी समस्या है।

हिमालय की चोटियों में दूसरी कठिनाई यह है कि इधर निर्जन प्रदेश में होकर यात्रा करनी पड़ती है। योरुप के अल्प्स आदि पर्वतों के ऊँचे भागों में प्रायः होटल मिलते हैं। एवरेस्ट के लिये भोजन वस्त्र आदि सभी सामान यात्री को साथ ले जाना पड़ता है। कभी कभी ईंधन याक की पीठ पर चालीस मील की दूरी से मंगाना पड़ता है। हिमालय का उतार सीधा सपाट है। यहाँ की बरफ विलक्षण है। ऊँचाई की हवा बहुत हलकी है। जैसे जैसे उंचाई बढ़ती है वैसे वैसे हवा हलकी होती जाती है। पहले लोगों का अनुमान था कि २६००० फुट की उंचाई पर हवा इतनी हलकी हो जाती है कि मनुष्य कृत्रिम आक्सीजन हवा के बिना जीवित नहीं रह सकता। पर कृत्रिम आक्सीजन (ओषजन) को डब्बों में भरकर ऊपर ले जाने से एक तो बोझ बढ़ता था। दूसरे यदि ऊपर पहुँचने पर यह हवा निकल गई तो और भी संकट की बात थी। पर अनुभव ने यह सिद्ध

कर दिया है कि अधिक उंचाई पर हल्की हवा मनुष्य की भूख और शक्ति को अवश्य कम कर देती है। पर यदि थोड़ी थोड़ी उंचाई पर पड़ाव डालकर चढ़ा जावे तो मनुष्य को हल्की हवा में रहने का अभ्यास हो जाता है। हल्की हवा में काम करने की शक्ति इतनी घट जाती है कि तम्बू से बाहर आने जाने में मनुष्य का दम फूल जाता है। २३००० फुट की उंचाई पर एक सप्ताह से अधिक ठहरने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। २७००० फुट पर तो दो दिन ठहरना भी भयानक है।

हिमालय को बरफ जहां कड़ी हुई वहां खोद खोद कर सीढ़ी बनानी पड़ती है। सीढ़ी बनाकर ऊपर चढ़ने में इतना परिश्रम पड़ता है कि मनुष्य शीघ्र ही थक जाता हैं और बहुत कम चढ़ाई हो पाती है। ढीली बरफ पर पैर फिसलने का डर रहता है। फिसलने पर बचना असम्भव है। कभो कभो यहां की तेज धूप गोरे लोगों के लिये प्राण घातक होती है। सिर पर तेज़ धूप मनुष्य को बेहोश कर देती है। पैर बरफ में ठंड से सुन्न होते रहते हैं। इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये चुने हुये लोग एवरेस्ट की चढ़ाई के लिये लिये गये। मंडली के

नेता ब्रीगेडियर जनरल ब्रूस गुरखा रेजीमेंट में ३० वर्ष तक सेना नायक रह चुके थे। वे पहाड़ी लोगों की बोल चाल और रहन सहन से भली भांति परिचित थे। इस मंडली में प्रसिद्ध चित्रकार, पशु पक्षी विद्या विशारद, डाक्टर आदि सम्मिलित थे।

तिब्बत के १३००० फुट ऊंचे पठार पर पहुंचने के लिये मंडली ने हिमालय की तंग घाटियों और ऊंचे दर्रों को पार किया। तिब्बत अज्ञात प्रदेश में बहुत खोज करने पर एवरेस्ट के ऊपर चढ़ने के लिये एक मार्ग का पता लगा। यह मार्ग हिमागार या हिम नदी के ऊपर होकर जाता था।

पहले १६५०० फुट की ऊंचाई पर बुनियादी पड़ाव बनाया गया। यहां भोजन, डेरा और दूसरा सामान इकट्ठा किया गया। फिर गुरखा और दूसरे पहाड़ी कुलियों की सहायता से थोड़ी थोड़ी दूर पर और पड़ाव बनाये गये। चौथा पड़ाव २३००० फुट की ऊंचाई पर था। इन पड़ावों पर हिन्दुस्तानी कुलियों ने आवश्यक सामान ढोकर इकट्ठा कर दिया था। पांचवां पड़ाव चोटी पर पहुँचने के लिये अधिक ऊंचाई पर बनाने का प्रयत्न किया गया।

रात को चढ़ने वालों में बड़ा उत्साह था। लेकिन सवेरे चार कुलियों को पर्वतीय बीमारी हो गई। यह बीमारी मनुष्य को बहुत कमजोर कर देती है और अधिक ऊंचाई पर हल्की हवा में होती है। लेकिन कुछ कुली अच्छे थे। थोड़ी चढ़ाई के बाद इन को अत्यन्त ठंडी हवा में कष्ट होने लगा। एक सुरक्षित स्थान पर चार अंग्रेज़ों में एक बीमार पड़ गया। उसे डेरे में छोड़ शेष तीन अंग्रेज़ आगे बढ़े। हलकी हवा में ऊपर चढ़ने से इनका भी दम फूल आता था। वे थोड़ी थोड़ी दूर पर आराम करने के लिये बैठ जाते थे। दोपहर तक तो यह चढ़ते गये और २६६८५ फुट की ऊंचाई तक चढ़ गये। इसके बाद इन्हें डर लगा कि आगे चढ़ने से वे रात को डेरे पर न लौट सकेंगे। इस लिये वे लौटे। लौटते समय कुछ और ताज़ी बरफ गिर गई थी। इससे पहाड़ी ढाल फिसलना और भयानक हो गया था। सावधानी से पैर रखते हुये उन्होंने अपने बीमार साथी (जिसके पैरों को पाला मार गया था) को लेकर ये लोग चौथे पड़ाव को लौटे। रात में मोमबत्ती की लालटेन के उजाले से यह लोग नीचे उतर रहे थे। डेरे के पास की पहाड़ी पर पहुँ-

चते ही मोमबत्ती समाप्त हो गई। भाग्य से एक को चट्टान से बँधा हुआ रस्सा मिल गया। इसी के सहारे से सब लोग चौथे नम्बर के पड़ाव में पहुँचे। चलते चलते इनका गला सूख गया था। लेकिन बरफ को पिघलाने के लिये कोई बर्तन न मिला अन्त में जमे हुये दूध में बरफ मिलाकर एक प्रकार की ठंडी मलाई बनाई और उससे अपनी प्यास और भूख शान्त की दूसरे दिन ये लोग तीन नम्बर के पड़ाव में पहुंचे। यहां कृत्रिम आक्सीजन (ओषजन) के हलके डब्बों की सहायता से ऊपर चढ़ने का प्रयत्न किया गया। इस बार दो अँग्रेज़ और एक गुरखा (तेजबीर) आगे बढ़े।

चौथे नम्बर के पड़ाव से कुछ दूर आगे इन्होंने रात्रि में विश्राम करने के लिये डेरा लगाया। इसी डेरे में विश्राम लेकर चोटी पर चढ़ने का विचार था। रात्रि को बरफ उड़ा लाने वाली इतनी तेज़ आंधी चली कि मनुष्य विस्तर और भूमि से कुछ ऊपर उठ जाते थे। डेरे को गड़ा रखने में सब ने पूरा जोर लगाया। यदि डेरा उड़ जाता तो सभी मर जाते। सबेरा होने पर बरफ का गिरना तो बन्द हो गया। लेकिन आंधी इतनी देर तक चलती

रही कि पहाड़ के ऊपर चढ़ने का समय न रहा। निचले पड़ाव के कुली थर्मस में भर कर इन लोगों के लिये गरम गरम बीफटी (गोमांस मिली हुई चाय) लाये। कृतिम आक्सीजन सूंघने से इनमें और भी अधिक स्फूर्ति आई। दूसरे दिन ये लोग कुछ ही आगे बढ़े थे कि विकराल आंधी फिर चलने लगी। तेजवीर को लौटना पड़ा। दो अँग्रेज़ साथी बरफ और ढीले पत्थरों के ऊपर चलते हुये २७,२३५ फुट तक चढ़ गये। यहां से एवरेस्ट चोटी के कुछ पत्थर साफ दिखाई देते थे। लेकिन तेज आंधी के सामने कमज़ोर दशा में चोटी तक चढ़ना इनके लिये असम्भव था। निराश होकर दोनों अँग्रेज़ पड़ाव पर लौट आये। इनके बाद मलोरी, सोमरव्यल और क्राफर्ड नामी तीन अँग्रेज़ों ने चोटी पर चढ़ाने का अन्तिम प्रयत्न किया। तीन नम्बर के पड़ाव से १४ कुली लेकर ये लोग चौथे नम्बर के पड़ाव में पहुंचे आगे बढ़ने पर ताजी बरफ इतनी गहरी थी कि पग पग पर इनके पैर घुटनों तक बरफ में धँस जाते थे। इसी समय जिस बरफ पर ये लोग चल रहे थे वह नीचे फिसल पड़ी। एक कुली और तीन अँग्रेज़ आगे आगे चल रहे थे। यह

चारों एक रस्से से एक दूसरे को बाँधे हुये थे। कुछ दूर फिसलने के बाद बरफ रुक गई और यह लोग अपने पैरों पर खड़े हो गये। नीचे की ओर १५० फुट की दूरी पर केवल ४ कुली दिखाई दिये। शेष ६ कुली नीचे फिसलकर बरफ में दब गये।

गड़े हुये कुलियों को बचाने के लिये सब लोग नीचे दौड़े। हाथ और कुल्हाड़ी से बरफ हटाई गई। एक कुली निकल आया। वह सांस ले रहा था। दूसरा कुली उलटा गड़ा हुआ मिला इसे निकालने में देर लगी। लेकिन वह भी जिन्दा था। फिर तीसरा कुली निकाला गया लेकिन वह मर चुका था। शेष इतनी गहरी बरफ में गड़ गये थे कि उनके जिन्दा बचने की आशा न थी। इसलिये उन्हें निकालने का भी प्रयत्न नहीं किया गया।

निराश होकर पूरी मंडली ३ नम्बर के पड़ाव में लौटी। इस प्रकार १९२२ की चढ़ाई सफल न हो सकी।

१९२४ में एवरेस्ट चोटी पर पहुंचने का फिर प्रयत्न किया गया। पड़ाव पुराने स्थानों में ही बनाये गये लेकिन तीसरा पड़ाव बनाने के बाद ऐसी तेज़ आंधी

चली और ऐसा कड़ा जाड़ा पड़ा कि सब को विवश होकर बुनियादी पड़ाव पर लौट कर शरण लेनी पड़ी। तूफान के शान्त होने पर चौथा पड़ाव बनाया गया। यहां बारह कुलियों ने डेरा लगा लिया था। लेकिन बरफ के जोर से गिरने से हेजार्ड महाशय ने तीन नम्बर के पड़ाव पर लौटने का निश्चय किया। चार कुली भोजन के लिये केवल भुना हुआ जौ लेकर आगे बढ़े। कर्नल नार्टन, सोमरव्यल और मेलोरी इनका पता लगाने निकले बरफ को काटकर यह लोग आगे बढ़े। कुली लोग कुछ दूर एक ऊँचे टीले पर थे। कुलियों के पास रस्सा न था। तीन अंग्रेज़ एक दूसरे को रस्से से बांधे हुये थे। किसी तरह कुली बिना रस्से के बरफ पर अंगुलियां गड़ाकर नीचे फिसल आये।

कुछ दिन के बाद मौसम साफ हो गया। चोटी पर चढ़ने की फिर तयारी होने लगी। मेलोरी महाशय की देख भाल में एक टोली ने २५,००० फुट की ऊंचाई पर पांचवां पड़ाव बनाया। कर्नल कार्टन और सोमरव्यल ने २६७०० फुट की ऊंचाई से तीन कुलियों से एक डेरा लगवाया। यही छठे नम्बर का पड़ाव था।

दूसरे दिन बिना कृत्रिम आक्सीजन के कर्नल नार्टन और सोमरव्यल आगे बढ़े। इन्हें एक पग बढ़ाने में तीन-चार बार सांस लेनी पड़ती थी। एक हज़ार फुट ऊपर चढ़ आने के बाद एक पग बढ़ाने में उन्हें सात आठ या दस बार सांस लेनी पड़ती थी। हर बीस या तीस गज़ की चढ़ाई के बाद वे एक दो मिनट के लिये बैठ जाते थे। सोमरव्यल का दम फूल गया। वह बैठ गया। कर्नल नार्टन कुछ गज़ आगे और बढ़े। लेकिन २८००० फुट के आगे वे भी न जा सके यहां से वे ४ नम्बर के पड़ाव को लौट आये।

मेलारी और इर्विन महाशय ने अन्तिम प्रयत्न किया। आठ कुलियों पर कृत्रिम आक्सीजन लदवा कर छठे नम्बर का पड़ाव बनाया गया। दूसरे दिन आकाश स्वच्छ और सुहावना था। मेलोर और इर्विन महाशय एवरेस्ट विजय के लिये आगे बढ़े। दोपहर के समय एक काले दाग़ की तरह पहले एक और फिर दूसरा चढ़ने वाला एवरेस्ट चोटी से लगभग ८०० फुट नीचे अन्तिम वार दिखाई दिये। इसके बाद फिर इनका पता न लग सका। दूसरे और तीसरे दिन भी इन दोनों का पता न

लगा। एक गुरखा फेरेज़ी अफ़सर एक भोटिया कुली यह दोनों अन्वेषण की भेंट चढ़ गये। मण्डली के शेष लोग इस बार भी निराश होकर लौट आये।

विलियम बेरेण्ट्स की आर्किटक यात्रा

सोलहवीं सदी में स्पेन और पुर्तगाल वालों ने दूसरे देशों को भारतवर्ष से व्यापार करने से भरसक रोका। उसी समय कुछ उत्साही मल्लाहों ने उत्तरी अमरीका के उत्तर होकर भारतवर्ष पहुँचने का प्रयत्न किया। बेरेंट्स ने योरुप और एशिया के उत्तरी किनारे से चल कर भारत पहुंचने का प्रयत्न किया।

बेरेण्ट्स हालैंड का रहने वाला था। प्रशान्त महासागर पहुँचने के लिये वह दो बार रूस के तट तक जहाज़ ले गया। लेकिन दोनों बार बहती हुई बरफ ने उसे आगे बढ़ाने से रोक दिया। १५०८ में हालैंड के कुछ धनी व्यापारियों ने उसकी सहायता की। दो जहाज़ तयार किये गये। बेरेण्ट्स ने अपने साथ अविवाहित तन्दुरुस्त मल्लाहों को लिया। जो उत्तर की ठंड सह सकें

यह यात्रा ग्रीष्म काल में ही हो सकती थी। इसलिये उसने मई महीने में हालैंड से प्रस्थान किया। बादवान लगाकर हवा के ज़ोर से चलते २ जहाज़ योरुप के उत्तर में नार्थ (उत्तरी अन्तरीप) के पास पहुंचे। इसके आगे इनका जहाज़ आर्क्टिक सागर में पहुंचा। दिन बड़े होने लगे। रात छोटी होने लगी। १ जून का सूर्य अस्त ही न हुआ। इसके बाद कई दिन तक सूर्य लगातार दिखाई देता रहा। इस प्रदेश को आजकल निशीथ सूर्य का देश (लैंड आफमिडनाइट सन) कहते हैं।

ग्रीष्म काल होने पर भी कुछ समय में जहाज़ को बहती हुई बरफ मिलने लगी दूर से यह सफेद हंसों के झुण्ड के समान मालूम पड़ती थी। अक्सर इसे बचाकर जहाज़ को चलाना पड़ता था। कहीं कहीं बरफ के ऊंचे टीलों के बीच में होकर जहाज को चलना पड़ता था। जैसे जैसे जहाज़ उत्तर की ओर बढ़ता था वैसे वैसे बरफ अधिक मिलती थी। १४ दिन चलने के बाद उन्हें एक बड़ा द्वीप मिला इसमें नुकीले पहाड़ थे। डच भाषा में नुकीले पहाड़ को स्पिटसबर्गन कहते हैं। इसलिये नुकीली पहाड़ों वाले इस द्वीप का नाम स्पिटसबर्गन पड़ गया। जहाज़ ने इस द्वीप के पास लंगर डाला।

देश दर्शन

एक दिन एक सफेद भालू का पीछा करने के लिये कुछ लोगों ने तीन नावें पानी में उतारी और तीन ओर से भालू पर हमला किया। भाला चलाते २ इन लोगों के हाथ थक गये फिर भी भालू ४ मील तक तैरता रहा। एक बार भालू ने एक नाव पर ऐसा पंजा मारा कि नाव उलटते उलटते बच गई। अन्त में वे मरे हुये हिरण को जहाज़ पर ले आये। इसकी खाल अलग निकाल ली गई। यह खाल १३ फुट लम्बी थी।

बरफ के कारण स्पिटसबर्गन के उत्तर में जहाज़ न जा सका। तब यह लोग पूर्व की ओर इसे चलाने लगे। फिर भी बरफ से जहाज़ को अक्सर बचाना पड़ता था। जुलाई में जहाज़ नोवा जेम्बला द्वीप में पहुँचा। जिस समुद्र को बेरेण्टस ने पार किया वह आजकल बेरेण्टस सागर कहलाता है। नोवा जेम्बला के तट पर इतनी बरफ थी कि जहाज को बहुत धीरे धीरे चलना पड़ा। एक स्थान पर जहाज को १४ दिन ठहरना पड़ा। कभी कभी मल्लाहों को डर लगता था कि बरफ कहीं जहाज को जकड़ कर चकनाचूर न कर दे। फिर भी वे पूर्व की ओर कुछ दूर तक बढ़े। अन्त में बरफ ने उनका मार्ग

रोक दिया। आइस हेवन नामक स्थान पर उन्होंने लंगर डाला। दूसरे दिन बरफ का ऐसा तूफान आया कि जहाज का पतवार टूट गया और जहाज के किनारे पर बंधी हुई नाव टुकड़े टुकड़े हो गई।

आगे बढ़ने का मार्ग रुका हुआ देखकर यह लोग घर (हालैंड) की ओर लौटे। लेकिन इस बार इधर भी इतनी बरफ थी कि तीन मल्लाह जहाज के आगे आगे बरफ को हटाने के लिये बरफ पर चलते थे। एक बार जहाज इनसे दूर को बह गया। यह लोग डरे कि कहीं वे बरफ पर ही न छूट जावें। पर हवा ने जहाज को फिर इनके पास कर दिया। ये लोग तुरन्त कूद कर जहाज पर चढ़ गये।

कुछ समय में जहाज के चारों ओर इतनी बरफ इकट्ठी हो गई कि जहाज पानी के ऊपर चार पांच फुट उठकर बरफ पर अटक गया। बरफ जहाज को दबाकर बड़ा भयानक शब्द करती थी। अतः उन्होंने उस वर्ष घर लौटने की आशा छोड़ दी और आइसहेविन (बरफ के बन्दरगाह) में शीतकाल बिताने का निश्चय किया।

यहां एक छोटा घर बनाया गया। नोवा जेम्बला

में पेड़ नहीं होते हैं। पर इनके भाग्य से कहीं से बहकर लकड़ी आ गई थी। इसे इन्होंने जलाने और घर बनाने के लिये इकट्ठा किया। घर बनाने में इन्हें बड़ी मेहनत करनी पड़ी। एक बार इनका बढ़ई पुराने अभ्यास के अनुसार एक कील को मुँह में दबाकर हाथों से लकड़ी गढ़ने लगा। विकराल ठंड में कील जीभ और ओठों के बीच में बरफ से जम कर जकड़ गई। जब उसने जोर लगाकर बरफ को बाहर खींचा तो बरफ से जमा हुआ खून निकल आया। शीत काल में इन्हें अक्सर सफेद भालू से लड़ना पड़ता था। एक भालू को मारकर इन्हों ने इसे पिछली टांगों के सहारे टिका दिया। कुछ ही समय में यह जम कर कड़ा हो गया। ठंड से कुछ लोग बीमार पड़ गये जहाज का बढ़ई मर गया। बरफ से जमी हुई ज़मीन इतनी कड़ी थी कि यह लोग कब्र न खोद सके। इसलिये उन्होंने उसकी लाश को पत्थरों से ढक दिया।

घर को पूरा करने के लिये कुछ लकड़ी जहाज़ की ले ली गई घर में खिड़कियां न थीं केवल एक दरवाजा और एक चिमनी (धुँआं निकलने के लिये) थी।

अन्वेषक-दर्शन

शीत काल में दिन छोटे और रातें बड़ी होने लगीं। ४ नवम्बर को सूर्य उदय ही न हुआ। जनवरी के अंत तक लगातार रात रही। घर में उजाला रखने के लिये वे भालू की चरबी जलाया करते थे। बाहर की ठंडी हवा को रोकने के लिये घर की छत पर उन्होंने जहाज का बादबान फैला लिया था। इसके ऊपर उन्होंने बड़े बड़े पत्थर रख दिये थे जिससे यह उड़ न जावे। इसी समय उन्हें एक सफेद लोमड़ी मिली। इसका मांस उन्हें इतना अच्छा लगा कि उन्होंने लोमड़ी फँसाने के लिये घर के बाहर जाल बिछा दिये। वे लोमड़ी का मांस खाते थे और गरम खाल से टोपी बनाते थे। पीने के लिये वे बरफ को पिघला कर पानी तयार कर लेते थे। थोड़ी सी शराब भी पी लेते थे। इसे वे हालैंड से साथ लेते आये थे।

शीत काल की बर्फीली आंधी में वे बाहर निकलने की हिम्मत नहीं करते थे। केवल कभी कभी लकड़ी और लोमड़ी की खोज में वे बाहर निकलते थे। तेज़ आंधी में सांस लेना कठिन हो जाता था। कभी कभी वे जहाज को देखने के लिये भी बाहर निकलते थे। बाहर निक-

लने के लिये उन्हें दरवाजे के पास बरफ काट कर सीढ़ियां बनानी पड़ती थीं। इसमें इतनी मेहनत पड़ती कि कुछ लोग छत की चिमनी में होकर निकलना अधिक सुगम समझते थे। जहाज में लोमड़ी और भालू आकर बहुत हानि पहुँचा जाते थे।

कोठरी के भीतर भी इतना जाड़ा था कि उन्हें चार-चार मोजे और दूसरे कपड़े पहनने पड़ते थे। एक दिन एक मल्लाह एक भीगा हुआ कपड़ा जलती हुई अँगीठी के सहारे सुखा रहा था। ठंड के मारे कपड़े के दूसरी ओर बरफ जमती जाती थी और वह जमकर कड़ा होता जाता था। मोड़ने से फट जाने का डर था। इसलिये मुलायम करने के लिये कपड़ा फिर गरम पानी में डाला गया। अगर वे आग तापते तो अगले भाग में आंच पहुँचती पीठ ठंड से अकड़ती जाती थी। भीतर की दीवारों पर भी ३ इंच मोटी बरफ जम गई थी। कुछ दिनों में घर का बाहरी भाग छत तक बरफ से ढक गया। छत पर लोमड़ियां आकर चिल्लाने लगीं। घर गुफा के समान हो गया था। फिर भी कभी कभी अच्छा मौसम होने पर कुछ लोग बाहर आकर बरफ का खेल खेलते थे।

ताज़ा भोजन और ताज़ी हवा न मिलने से यह लोग कमज़ोर और बीमार पड़ गये।

जनवरी के अंत में सूर्य फिर दिखाई देने लगा। धीरे धीरे कुछ घंटे तक उजाला रहने लगा। इससे इनका साहस बढ़ा। कुछ लोग घर लौटने के लिये आतुर होने लगे। लेकिन जहाज के लिये मार्ग साफ न था। इसलिये जगह जगह बरफ का ढेर था। कुछ लोगों ने दो नावों से लौटने के लिये आज्ञा मांगी। नावों से लौटना भी भयानक था। लेकिन बहुत प्रार्थना करने पर बेरेन्ट्स ने एक चिट्ठी लिखकर जहाज के पीपे में रख दी। कई सौ वर्ष बाद यह चिट्ठी इधर आने वाले एक अँग्रेज़ सौदागर को मिली। जून मास में लौटने की तयारी हुई। रास्ते में कई बार नावें बरफ में टूटने से बाल बाल बचीं। बेरेन्ट्स बीमार होकर मार्ग में ही मर गया। जुलाई में उन्हें कुछ भोजन मिला। १३ महीने बाद इस समय उन्होंने दूसरे मनुष्यों का चेहरा देखा। इसी दिन उन्होंने भर पेट भोजन खाया। यहीं उन्होंने स्कर्वी घास खाई जिससे उनकी सूजन की बीमारी दूर हो गई। अगस्त में रूस के तट पर पहुँचे। घर अभी दूर था।

आगे बढ़ने पर नावें भटक कर एक दूसरे से अलग हो गईं।

एक रूसी जहाज ने इन दोनों को सीधा मार्ग बताया और कुछ भोजन दिया। पांच दिन के बाद नावें एक स्थान पर फिर मिलीं। यहां के लोग दयालू थे। उन्हें अपने घर में ले गये जो गरम और सूखे थे। यहीं इन मल्लाहों ने कई महीने में पहली बार भर पेट भोजन किया। एक दो दिन ठहर कर और मार्ग के लिये भोजन लेकर वे फिर आगे बढ़े। इस बार उन्हें हालैंड का जहाज मिला। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार १६०० मील लम्बी भयानक यात्रा के बाद यह लोग हालैंड पहुँच गये। हालैंड में इनका अच्छा स्वागत हुआ। लेकिन बेरेंएटस के मरने का समाचार सुन कर सब को दुःख हुआ।

फ्रैंकलिन की आर्किटक यात्रा

ध्रुव प्रदेश सैकड़ों वर्षों से योरुप के साहसी यात्रियों को अपनी ओर बुलाते रहे हैं। इधर मछली मारने से उन्हें बड़ा लाभ होता था। इधर होकर वे एशिया के लिये सुगम मार्ग ढूँढ़ निकालना चाहते थे। आर्क्टिक प्रदेश के इन्हीं साहसी यात्रियों में एक जान फ्रैंकलिन था। उसने इसी आर्क्टिक यात्रा में अपने आप को बलिदान कर दिया। वह १७८६ ई० में इंगलैंड के एक धनी घराने में पैदा हुआ था। उसे समुद्र से बड़ा प्रेम था। १४ वर्ष की उम्र में वह स्वयंसेवक (वालंटियर) होकर ब्रिटिश जल सेना में भरती हो गया १८०१ और १८०५ में वह नेल्सन के जहाजों के साथ था। वह अपने चाचा के साथ आस्ट्रेलिया के अन्वेषण में भी गया था। १८१८ में वह कप्तान बुचान के साथ ध्रुव प्रदेश की यात्रा में गया इसमें उसने बड़ा उत्साह दिखलाया। दूसरे वर्ष १८१६ में ब्रिटिश जलसेना की ओर से हडसन बे का पता लगाने और फिर बेरिंग प्रणाली की ओर जहाज ले जाने के लिये भेजा गया।

हडसन प्रणाली और हडसन की खाड़ी की यात्रा

बड़ी लम्बी और भयानक थी। इस यात्रा में फ्रैंकलिन का जहाज तीन बार चट्टानों से टकराया और एक बार हिमशिला (आयसबर्ग) से लड़ गया। ३० अगस्त को जहाज हडसन बे कम्पनी के फोर्ट यार्क में पहुंचा। १० दिन के बाद वह हलकी नावें लेकर भीतरी यात्रा में गया। मार्ग नेल्सन नदी से विनीपेग झील और भीतर की ओर था। नाव चलाने वाले अनुभवी रेड इण्डियन थे। फिर भी नदी में निकास की ओर बढ़ना कठिन था। कभी कभी सारा सामान सिर के ऊपर रख कर चलना पड़ता। एक प्रपात में फ्रैंकलिन बाल बाल बच गया। फिर भी यात्रियों में उत्साह था। वे नदी से मछली और बन से हिरण का शिकार किया करते थे। रात्रि में आरोरा बोरियालिस नामी उत्तरी प्रकाश को देख कर उन्हें विशेष आनन्द आता था। आधे अक्तूबर से सरदी बढ़ गई। पतवार से पानी के जो कण ऊपर उछलते थे वे जम जाते थे। पतवारों पर भी बरफ की पतली तह जम जाती थी।

२० जनवरी को उसने एथेबास्का झील से प्रस्थान किया। सामान से लदी हुई स्लेज गाड़ियों को कुत्ते

खींचते थे। यात्री पैदल चलते थे रात को वे बरफ से ढके हुये स्थान को कुछ साफ कर लेते और भोजन के बाद कम्बल ओढ़ कर इसी पर सो जाते ठंड इतनी पड़ती थी कि पीने के पहले ही गरम गरम चाय जम जाती थी। कभी कभी थरमामीटर का पारा भी जम जाता था।

१० सप्ताह में ८५० मील की यात्रा पूरी करने पर सब लोग फोर्ट चिपेव्यान पहुंचे। फ्रैंकलिन कापरमाइन नदी के मार्ग से उसी वर्ष आर्क्टिक महासागर पहुंचना चाहता था।

स्लेव नदी के मार्ग से जुलाई के अंत में फ्रैंकलिन ग्रेट स्लेव झील के तट पर फोर्ट प्राविडेन्स में पहुंचा। यहां उन्हें ऐसे रेडइण्डियन मिले जो उत्तर का मार्ग जानते थे। उन्हें प्रसन्न करने के लिये जो भेंट दी गई उससे वे प्रसन्न थे। अगस्त में स्लेव झील के उत्तर की यात्रा की गई। इसके बाद रेडइण्डियन सरदार ने बतलाया कि अब अधिक आगे बढ़ने में कुशल नहीं है। एक झील के किनारे शीतकाल बिताने के लिये लकड़ी के लट्ठों का झोपड़ा बनाया गया। इस झील का नाम विंटर (शीतकाल) झील पड़ गया।

देश दर्शन

१४ जून को कारमाइन नदी के लिये प्रस्थान किया गया। नदी तक पहुँचने में दो सप्ताह लगा। नदी इस समय भी बरफ के टुकड़ों से भरी पड़ी थी। इसलिये नदी के मुहाने तक उतरने में तीन सप्ताह लग गये। फ्रैंकलिन के साथ ४ अंग्रेज़ ३ एस्किमो १२ रेडइण्डियन और एक दुभाषिया था। २१ जुलाई को सब लोग नदी के मुहाने पर पहुँचे। दो छोटी नावों पर चढ़ कर सब लोग पूर्व की ओर मुड़े। इस समय आर्क्टिक का विषम तट बरफ से घिरा था। समुद्र-जल में भी बरफ की शिलाएँ थीं। ऐसी दशा में नावों को आगे बढ़ाना भयानक था फिर भी यात्री लोग एक मास तक आगे बढ़ते रहे। उन्होंने अपने ६५० मील लम्बे मार्ग के नक़शे भी बनाये।

१८ अगस्त को वे एक स्थान पर पहुंचे। उन्होंने इसका नाम टर्न एगेन (फिर लौटो) अन्तरीप रक्खा। इसके बाद सब को चिन्ता होने लगी। हुड नदी के मार्ग से वे लोग २५ अगस्त को भीतर की ओर घुसे। पर यह नदी अभीष्ट दिशा से नहीं निकलती थी। इसलिये तीसरी दिसम्बर को इसे छोड़ कर वे दक्षिण पश्चिम की

ओर सीधे हो लिये। अपनी नावें भी साथ लेते आये। एक तूफान में इन्हें तीन दिन तक डेरे में रहना पड़ा। जाड़ा इतना कड़ा था कि भीगी सिवार नहीं जल सकती थी और रात को उनके कपड़े जम जाते थे। भोजन की कमी से फ्रैंकलिन इतना कमज़ोर हो गया था कि वह चल नहीं सकता था। ताज़ी बरफ ने गहराई तक ज़मीन को ढक लिया। इसके नीचे फिसलने पत्थर थे। इससे चलने वाले अक्सर गिर जाते थे। इसी से एक नाव भी टूट गई। इसे जलाकर सब लोगों ने तापा और भोजन बनाया। तीन चार दिन के बाद उन्होंने एक मुश्की बैल, एक हिरण और कुछ तितरों को मारा। इनको वे शीघ्र ही समाप्त कर गये। अन्त में भोजन की कमी से उन्होंने पुराने सूखे चमड़े को चबाया और लिचेन घास को खाया। कापरमाइन नदी के निकास के पास एक हिरण की सड़ी हुई लाश पड़ी थी। इसे वे तुरन्त चट कर गये। उनकी दूसरी नाव भी छूट गई थी। भूक और बीमारी से मरते मरते बच कर १८२२ में फ्रैंकलिन साढ़े तीन वर्ष के बाद इँगलैंड पहुँचा। १८२५-२७ में फिर वह कापरमाइन नदी के मुहाने पर आया। इस बार

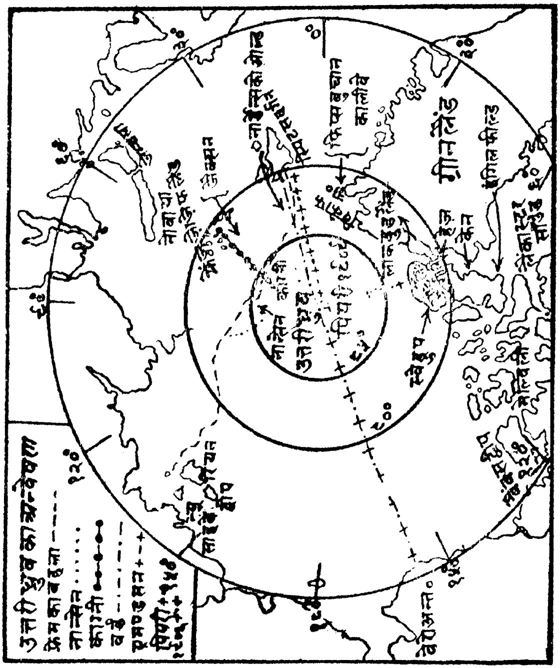
उसने कुछ पश्चिम की ओर तट का अन्वेषण किया। १८४५ में ६० वर्ष की अवस्था में इरेबस और टेरर जहाज़ लेकर फिर आर्क्टिक अन्वेषण के लिये आया। वह उत्तरी-पश्चिमी मार्ग का पता लगाने वाला था। लेकिन इस बार फ्रैंकलिन और उसके साथी इँगलैंड लौट कर न जा सके। कई वर्ष तक उनका कोई पता न लगा। कई अन्वेषण मंडलियां फ्रैंकलिन का पता लगाने आईं। १८५६ में पता लगा कि एक वर्ष आगे बढ़ने के बाद १८४६ में वे बरफ में फँस गये। १८४८ में उन्होंने जहाज़ को छोड़ दिया। इसके बाद फिर फ्रैंकलिन और उसके साथियों का कोई पता न चला। न केवल इँगलैंड वरन् फ्रान्स और अमरीका ने भी फैंकलिन का पता लगाने के लिये कई (लगभग ४०) मंडलियां भेजीं। इनमें कई मंडलियां स्वयं नष्ट भी हो गईं पर कोई पता न चला। लेकिन इस घटना से उत्तरी ध्रुव का अन्वेषण कार्य ज़ोर पकड़ गया। लोग अधिकाधिक उत्तर की ओर बढ़ने लगे। अन्त में १९०९ में अमरीका के साहसी यात्री पियरी ने उत्तरी ध्रुव पर देश का झंडा गाड़ दिया।

नान्सेन की ध्रुवीय यात्रा

नार्वे-निवासी फ्रिज़ोफ नान्सेन क्रिश्चियाना (आस्लो) के पास सन् १८६१ में पैदा हुआ था। २१ वर्ष की उम्र में क्रिश्चियाना यूनीवर्सिटी छोड़ने के बाद उसने एक जहाज़ में स्पिट्ज़बर्गेन और ग्रीनलैंड की यात्रा की। आर्क्टिक अवस्थाओं का यह उसका पहला ही अनुभव था। सम्भव है कि इसकी यात्रा से उसे इतनी उत्तेजना मिली कि उसने हिमाच्छादित ध्रुवप्रदेश के रहस्य को जाने की ठान ली हो।

इसके छः वर्ष बाद १८८८ ई० में उसने ग्रीनलैंड के दक्षिणी भाग को पूर्व से पश्चिम तक पार करने की तयारी कर दी। इस द्वीप का भीतरी भाग अधिक गहराई तक बरफ़ से घिरा है। इसका धरातल सफ़ेद ही सफ़ेद दिखाई देता है। पूर्वी किनारे पर सपाट पथरीली पहाड़ियाँ और भयानक हिमागार हैं। इसी से पूर्वी तट प्रायः दुर्गम है। पश्चिमी तट इतना दुर्गम नहीं है। जहाँ तहाँ छोटी छोटी बस्तियाँ हैं। इसीलिए नान्सेन ने ग्रीनलैंड को पूर्वी ओर से पार करने की सोची। इस प्रकार

उसके लिए लौटना असम्भव था। उसने सफल होने अथवा बलि होने की ठान ली।



नान्सेन की मंडली के तीन नार्वे-निवासी और दो लापलैंडनिवासी शामिल थे। उनके पास कुत्ते या रेन-

डियर भी न थे। उनके यन्त्र, भोजन और दूसरे आवश्यक पदार्थ हाथ से खींचे जाने वाले पाँच स्लेजों या बिना पहिये की गाड़ियों में लदे थे। इन्हीं में स्की के छः जोड़े लदे थे। लकड़ी के जूते ३ या ४ इंच चौड़े और ८ फ़ुट लम्बे होते हैं। इनकी सहायता से बरफ़ पर चलने में बड़ा आराम रहता है। डेन्मार्क का एक जहाज़ इस मंडली को आयसलेंड ले आया। फिर एक दूसरा जहाज़ उन्हें ग्रीनलैंड के तट के पास उतार गया। बर्फ़ के बीच में पानी की छोटी छोटी गलियाँ थीं। नान्सेन ने इन्हीं के बीच में अपनी नाव के खेने का निश्चय किया। जहाँ कहीं पानी बहुत ही तंग होता था वहाँ उन्हें कुदाली से काम लेना पड़ता था लेकिन हवा और ज्वार बरफ़ के ढेर को स्थिर नहीं रहने देते थे। जिससे उनकी कमज़ोर नाव के चकनाचूर हो जाने का डर रहता था। ऐसे मौक़ों पर नाव जल्दी से उठाकर बरफ़ पर रख ली जाती थी। कई घंटों तक नाव और स्लेज को बरफ़ के ऊपर घसीटना पड़ता था। जब दूसरा जल-मार्ग मिलता तो नाव फिर पानी में डाल दी जाती थी। रात को बरफ़ के टीलों पर डेरे लगाये जाते थे।

अगर पहरेदार संकट के समय बीच में न जगाता तो सब लोग सबेरे तक नींद भर सोते थे। समुद्री धारा उन्हें धीरे धीरे दक्षिण की ओर स्थल के पास ले जा रही थी। अन्त में २८ जुलाई को उन्होंने स्थल पर पैर रक्खा। तट पर इस्किमो लोगों की बस्तियाँ मिलीं। बड़ी .खुशी से हंसते हुए नान्सेन और उसके साथियों को अपने खाल के घर में ले गये। पर उनका एक शब्द भी इन यात्रियों की समझ में न आया।

ग्रीनलैंड का भीतरी भाग हिम के विशाल आवरण से ढका है। दबाव के कारण यह बरफ़ बाहर की ओर समुद्र के पार तक बढ़ती जा रही है। फिअर्ड तट में विशाल हिम-खंड (आयसबर्ग) समुद्र के भीतर भी घुस गये हैं। बहुत गहरे पानी में पहुँचने पर ये टुकड़े टूट टूट कर धाराओं के साथ बहने लगते हैं और उत्तरी अटलांटिक के जहाज़ों को संकट उपस्थित करते रहते हैं। इन विशाल हिम-खंडों के सामने बड़े से बड़ा जहाज़ भी खिलौना सा जान पड़ता है। अधिक दक्षिण में पहुँचने पर वे पिघल जाते हैं। १० अगस्त को वे प्रधान स्थल पर उतरे और नान्सेन सर्वोत्तम मार्ग की

खोज में चल पड़ा। यहाँ चलना बड़ा ही कठिन था। कई जगह पर लोग पद पद पर बरफ़ में गहरे धंस जाते थे। कहीं कन्दराओं के ऊपर बरफ़ का महराब था। यात्रियों को सावधानी से हाथ पाँव टेक टेक कर इन्हीं के ऊपर से रेंगना पड़ता था। अधिक भीतर भी बरफ़ ही बरफ़ थी। केवल बीच बीच में कहीं कहीं पर द्वीप के समान कुछ काली चोटियाँ ऊपर उठी हुई थीं।

१५ अगस्त को नावों को छोड़कर सब लोग भीतर की ओर बढ़ने लगे। स्लेजों को खींचना बड़ा ही कष्ट दायक था। रस्सियों ने रगड़ रगड़ कर उनके कंधों को ऐसा काट दिया कि वे जल उठे। बर्फ़ की गहरी कन्दराओं में कोई गिर न जावे इसलिए प्रत्येक मनुष्य की कमर में रस्सी बंधी थी। फिर भी कभी कभी आखिरी साथी फिसल ही जाता। यह माना कि रस्सी से बंधे होने के कारण अचानक कोई मनुष्य अपार गहराई में नीचे न गिरता। लेकिन उसके दोनों ओर बरफ़ की ठंडी और नीली दीवारें रहतीं और नीचे की गहराई का कुछ पता ही न था। इस प्रकार लटकना भी बड़ा पीड़ाजनक था। रस्सी टूटते ही मरना निश्चित था।

फिर भी ये लोग आगे बढ़ते ही रहे। लेकिन १२ घंटे में ५ या ६ मील से अधिक नहीं चल पाते थे। पहिले वे रात को चलते थे जिससे बरफ़ कुछ कड़ी पड़ जाती थी। पर अधिक भीतर पहुँचने से उंचाई भी बढ़ती गई जिससे रात को चलने की ज़रूरत न रही। उंचाई के कारण तापक्रम कम होने से दिन को भी काफी कड़ी बर्फ़ मिलती थी। दूसरी सितम्बर को वे ८ हज़ार फ़ुट की उंचाई पर पहुंच गये। पर ज़मीन समतल थी। इस लिए उन्होंने अपनी अपनी स्की से काम लिया। स्की की सहायता से १८ दिन में २४० मील की यात्रा पूरी हो गई। पर वह भीतरी यात्रा सुनसान सी थी। दृश्य में कोई परिवर्तन न था। पशु-पक्षी का भी नाम न था। प्रति दिन सबेरे जल्दी उठना बरफ़ पर चलना और रात को डेरा गाड़ कर सो जाना होता था। डेरे के भीतर जब छोटे कुकर (चूल्हे) में भोजन बनता था वही समय वास्तव में उनके प्रमोद का होता था। ठंड बड़ी विकराल पड़ती थी। उससे बचने के लिए वे नमदे से ढककर अपने को रेनडियर की खाल से बने हुए थैलों में बन्द कर लेते थे। फिर भी कभी कभी सबेरे को सिर

के चारों ओर सफ़ेद बरफ़ मिलती थी। शाम को भी चुभनेवाली आँधी में डेरा गाड़ने में बड़ा कष्ट होता था एक बार बड़े ज़ोर की बरफ़ीली आँधी आई। इसमें एक दो गज़ से अधिक दूर की कोई चीज़ दिखाई नहीं देती थी। बड़ी मुश्किल से डेरा बचाया गया।

लेकिन यात्रियों को प्यास के मारे और अधिक कष्ट होता था। चारों ओर बरफ़ ही बरफ़ थी। पानी का नाम न था। हर एक आदमी अपने से सटी हुई एक बोतल बाँधे रहता था। इस बोतल में बरफ़ भरी रहती थी। शरीर की गरमी से बरफ़ पिघलने लगती। लेकिन इस तरह से पिघलने में बड़ी देर लगती। फिर भी बहुत ही थोड़ा पानी मिलता था। इन मेहनती लोगों को बहुत अधिक पानी की ज़रूरत पड़ती थी। जब ये पश्चिम की ओर पहुंचे तो उन्हें सबसे अधिक प्रसन्नता साफ़ पानी को देखकर हुई। उन्होंने पानी को बार बार पिया और इतना पिया मानों उन्हें फिर कभी पानी न मिलेगा।

अथबिच पहुंच कर नान्सेन ने नाव चलाने की सोची। लेकिन चढ़ाव उतार के कारण सफलता न हुई।

पश्चिमी तट पर उतरने पर और भी ख़राब बरफ़ मिली। स्लेज गाड़ियों को फिर घसीटना पड़ा। ऊंचे टीलों को पार करने में वे उठा ली जाती थीं। पाँच दिन के बाद बरफ़ पीछे छूट गई उनके सामने सुन्दर झील और हरी घास से ढकी हुई पहाड़ियाँ थीं। सब लोग स्थल को देखकर बड़े ही प्रसन्न थे। अन्त में वे पश्चिमी तट की गाडथाब बस्ती में पहुँच गये और उन्होंने ग्रीनलेंड को सर्व-प्रथम एक सिरे से दूसरे सिरे तक पार कर दिया।

ग्रीनलेंड की यात्रा से नान्सेन ने इस्किमो लोगों के रहन-सहन से पूरी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। इसी से वह आर्क्टिक महासागर की यात्रा के लिए तैयार हो गया। इसका फल यह हुआ कि नान्सेन जिस तयारी के साथ आर्क्टिक महासागर में गया उस तयारी के साथ पहले और कोई अन्वेषक वहाँ नहीं पहुँचा था। इसी-लिए नान्सेन उन सबसे कहीं अधिक आगे पहुँचने में सफल हुआ।

उसने अपने लिए विशेष जहाज़ बनवाया। जहाँ तक सम्भव था यह जहाज़ मज़बूत था। बड़ा भी केवल

इतना ही था कि उसमें कोयला और १२ मनुष्यों के लिए ५ वर्ष का भोजन समा सकता था। छोटे और मज़बूत जहाज़ से मतलब यही था कि वह बरफ़ के दबाव को सह सके। ढालू भी इतना था कि उसकी बगलों में बरफ़ न ठहर सके। उसने विचारा कि मैं अपने जहाज़ को बरफ़ के बीच में होकर साइबेरिया के उत्तर में अधिक से अधिक दूर ले जाऊँ और बरफ़ के बीच में जम जाने पर उसे बहने दूं। इस प्रकार मेरा जहाज़ मन्द समुद्री धारा में उत्तरी ध्रुव को पार करके बरफ़ के साथ साथ अटलांटिक महासागर में पहुँच जावेगा। २४ जून सन् १८९३ में अपने १२ चुने हुए साथियों के साथ नान्सेन ने क्रिश्चियाना से फ्रेम नामी जहाज़ में प्रस्थान कर दिया। बढ़ते बढ़ते २४ जुलाई को उन्हें पहले-पहल बरफ़ मिली जिसने उनका दो वर्ष तक पीछा न छोड़ा। वार्डा में सभ्य संसार पीछे छूट गया। वैगन द्वीप में उन्होंने जहाज़ को ठहराया और ३४ इस्किमो कुत्ते जहाज़ पर चढ़ा लिये जो उनके लिए पहले ही से साइबेरिया से भेजे जा चुके थे। इन कुत्तों पर सामान लादकर नान्सेन ने ध्रुव की ओर पहुंचने

की बात उस समय के लिए छोड़ रखी थी जब कि जहाज़ का आगे बढ़ना सम्भव ही न हो। अधिकतर कुत्तों के लम्बे लम्बे बाल बरफ़ के समान सफ़ेद थे। कुत्ते भूरे या खाकी भी थे। उनके कान सीधे खड़े थे। पर ये कुत्ते बड़े दुष्ट थे और आपस में लड़ा करते थे।

यहाँ ठहर कर यात्रियों ने भीतर की भी सैर की। उन्होंने टुंड्रा को ग्रीष्मऋतु के सुहावने भेष में देखा। चपटे और निचले मैदान में मीलों तक तरह तरह के जंगली फूल फूले हुए थे। छोटी छोटी स्लेज में बड़ी मुश्किल से कुत्तों की मंडली जोती गई। जुतते ही कुत्ते इधर-उधर भागने लगे। उन्होंने स्लेज को उलट दिया और आपस में लड़ने लगे। उनको सीधी राह पर चलाने के लिए उन पर कोड़ों की खूब मार पड़ती थी। ४ अगस्त को डरावना केरा सागर आ गया। तट चपटा और बीरान था। लेकिन किनारे पर कुछ हिरन (रेन-डियर) दिखाई दिये। अपने भोजन को बढ़ाने के लिए नान्सेन ने उनको मारने की सोची। लेकिन ये डरपोक थे। इस लिये शिकारियों को नंगी और बरफ़ीली ज़मीन पर हाथ और घुटनों के बल उनके पास तक जाना

पड़ा। २१ हिरण और २ रीछ उनके हाथ आये। इन्हें जहाज़ तक ले जाने में भी बड़ी मेहनत पड़ी। इस समय साफ़ धूप देखकर यात्रियों को बड़ी ख़ुशी हुई।

पुरानी दुनिया के सबसे अधिक उत्तरी स्थान चेल्युस्किन अन्तरीप में वे १० सितम्बर को कुशलपूर्वक पहुंच गये। इस घटना की ख़ुशी में उन्होंने बढ़िया भोजन किया और संगीत सजाया। इसके कुछ दिन बाद नान्सेन और उसके दो ज़रा ही मरने से बच गये। उनकी नाव को वालरस या ध्रुवीय हाथियों ने घेर लिया पहले उनकी नाव हिली फिर पास ही विशाल सिर, लाल आँखें और लम्बे दाँत दिखाई देने लगे। लेकिन ये जानवर भी काफ़ी डरे हुए थे। उन्होंने पानी में डुबकी लगा ली। लेकिन दो मार डाले गये और उनका भोजन बनाया गया।

पर साफ़ पानी का अन्त हो रहा था। बरफ़ अधिकाधिक बढ़ रही थी। आगे धीरे धीरे ही बढ़ना होता था। अन्त में २५ सितम्बर को फ्रेम (जहाज़) बर्फ में जकड़ गया। यात्रियों को ऐसा जान पड़ा कि अब जहाज़ का कभी छुटकारा न होगा। ध्रुव को पार करके अट-

लांटिक महासागर में वह निकलने से शायद भले ही बरफ़ से बच जावें।

शीत-काल की लम्बी रात्रि भी आने वाली थी। पर धीरज से काम लेने के सिवा और चारा ही क्या था? जहाज़ पर रस्सा बनाने, मरम्मत करने, मस्तूल संभालने और डाइनिमो लगाने के लिये हवाई कल चलाने का प्रबन्ध किया गया। इस डाइनिमो से ही प्रकाश किया गया। कुत्ते भी छोड़ दिये गये, वे ख़ुशी से भौंक भौंक कर एक दूसरे पर टूट पड़े और थोड़ी ही देर में ख़ून से सन गये।

बिजली के समान धाड़ धाड़ कर बरफ़ जहाज़ को दबाने लगी। लम्बी सपाट दीवारों के रूप में चारों ओर से बरफ़ इतनी ऊंची हो रही थी कि जहाज़ की ऊंची रस्सियों के ऊपर उठ रही थी। एक बार ये लोग सचमुच डर गये और अपना सामान झट से बरफ़ पर डालने लगे। लेकिन इनके वीर जहाज़ ने बरफ़ का दबाव सह लिया। नान्सेन ने हिसाब लगाया कि अपने आप बहकर जहाज़ को दूसरी ओर पहुँचने में कम से कम आठ

वर्ष लगेंगे। इस यात्रा में नान्सेन सफल न हुआ पर ध्रुवसागर का पता लगाने का श्रेय नान्सेन को ही प्राप्त है।

जहाज़ को छोड़ कर नान्सेन ने अपने एक साथी के साथ ध्रुव तक पैदल जाने का निश्चय किया। उन्होंने १४ मार्च सन् १८९५ ई० को जहाज़ से प्रस्थान किया। अपने साथ में १०० दिन का भोजन और कुत्ते ले लिये। उन्हें मार्ग में अपूर्व कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बर्फीली पहाड़ियों पर उन्हें कुत्तों को उठाना पड़ता था। जब जब स्लेज उलट जाती उन्हें ही ठीक करके खींचनी पड़ती। शाम तक इस काम से वे इतने थक जाते थे कि उन्हें चलते चलते नींद आने लगती थी। कभी कभी बर्फ़ीले जूतों पर गिर पड़ने पर उन्हें होश आता था। अप्रैल में वे इस परिणाम पर पहुँचे कि बर्फ़ीली पहाड़ियों को पार करके ध्रुव तक पहुंचना असम्भव है। वे पिछले यात्रियों से २०० मील आगे (८६°१० उत्तरी अक्षांश तक) पहुंच गये थे। फिर भी ध्रुव उनसे २६१ मील और दूर था। अधिक समय न लगाकर वे दक्षिण की ओर लौटे। उन्हें खुला समुद्र

या स्थल कहीं नहीं दिखाई देता था। रोज़ रोज़ बरफ़ उनके सामने आती थी।

एक बार उत्तरी प्रकाश का विचित्र दृश्य उनके सामने आया। आकाश में एक चमकीली धारा एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गई। उसके नीचे और ऊपर चमकीले झंडे फैलने लगे। इनका रंग बारी बारी से नारंगी रंग से सुनहरा, फिर बैंजनी और सफ़ेद होने लगा। आकाश में प्रकाश इस प्रकार गति करता था मानों हवा उसे हिला रही हो। एक बार आकाश फिर गुलाबी और इसके बाद हरा हो गया। सब लोग दंग होकर इस दृश्य को तब तक देखते रहे जब तक आकाश बिलकुल साफ़ न हो गया।

एक दिन बड़ा रीछ बरफ़ के टीलों में छिपे छिपे कुत्तों पर छापा मारने लगा। कुत्ते भौंकने लगे। उनका भौंकना सुनकर जोहानसेन बाहर आया। रीछ उस पर टूट पड़ा। लेकिन भाग्य से कुत्ते रीछ का पीछा करते ही रहे। नान्सेन ने बड़े ज़ोर से रीछ का गला पकड़ लिया और रीछ ने जोहानसेन के सिर पर पंजा

मारने को उठाया। इतने ही में नान्सेन ने रीछ को गोली से मार दिया।

पाँच महीने तक बहती हुई बरफ़ पर भटकने, सैकड़ों कठिनाइयाँ सहने और ५०० मील की यात्रा समाप्त करने के पीछे उन्हें ६ अगस्त को खुला पानी मिला। सब लोग .खुशी से फूल उठे। उन्होंने अपनी कायकों या कनवस की नावों को सँभाला। अब उनके संकटों का अन्त था। उनके सामने घर का खुला मार्ग था। नावों में मस्तूल बाँध बाँध कर सब लोग चलने के लिए तैयार हो गये! तेज़ हवा ने भी उनकी मदद की। कुछ दिन खेने के बाद उन्हें एक छोटा द्वीप मिला और दो वर्ष के पीछे उन्होंने ठोस ज़मीन पर पैर रक्खा। अन्त में वे 'फ्रैंज़ जोज़फलैंड के उत्तर में पहुंच गये। पर शीतकाल का आरम्भ हो गया था। इसलिए वहीं सर्दी बिताने का निश्चय किया गया। उन्होंने वालरस की खाल, और घास (सिवार) का एक इस्किमो झोपड़ा बनाया और अपने रेशमी डेरे से उसकी छत पाट दी। वालरस की हड्डियों से कुदाली और फावड़े का काम लिया गया। यात्रियों को विकराल शीत में झोपड़ा बनाने

में बड़ा कष्ट हुआ। यह झोपड़ा ज़मीन से एक गज़ ऊपर और एक गज़ नीचे था। लम्बा इतना भी नहीं था कि वे सब आराम से पैर फैला सकें। इस्किमो लोगों की ही तरह ये लोग भी रीछ, सील और वालरस का शिकार करके अपना पेट भरते थे।

इस झोपड़े के २६७ दिन बिताने के बाद ६ मई सन् १८६६ ई० में वे तटीय बरफ़ के किनारे किनारे स्पिट्ज़बर्गन द्वीप की ओर चल दिये। १२ जून को वे बरफ़ के सिरे पर पहुँच गये। यहाँ एक बड़ी दुर्घटना हुई। अपनी नावों को बरफ़ के किनारे पर बाँध कर वे पास की बरफ़ीली पहाड़ी पर इसलिए गये कि वे दूर तक पानी पर नज़र डाल सकें। वे कुछ ही दूर बढ़े थे कि इन्होंने कायक (नावों) को बहते देखा। इस समय सचमुच संकट की अवस्था थी। सारा समान नावों पर ही लदा था। यदि वे नावों को न पकड़ सके तो स्पिट्-ज़बर्गन तक पहुँचने और बचने की कोई आशा न थी। वे तेज़ी के साथ किनारे की ओर दौड़े। कुछ कपड़े उतार कर नान्सेन बरफ़ीले पानी में एक-दम कूद पड़ा। लेकिन हलकी नावें अधिक तेज़ी से आगे बढ़ती जाती

थीं। नान्सेन के हाथ ढीले पड़ने लगे। लेकिन यह सोच कर कि सबका जीवन नावों के ही पकड़ने पर निर्भर है नान्सेन ने फिर ज़ोर मारा और अन्त में एक नाव के सिरे को पकड़ ही लिया। बड़ी मुश्किल से वह नाव के ऊपर चढ़ा। वह ठंड के मारे सुन्न पड़ गया था। थक भी इतना गया था कि उससे ठीक ठीक पतवार नहीं उठते थे। पर किसी न किसी तरह वह नावों को किनारे पर खे लाया और सबकी जान बची। दूसरे दिन सब लोग दक्षिण की ओर बढ़े। लेकिन रास्ते में एक विशाल वालरस ने उन पर हमला किया और एक नाव में अपने बड़े दांतों से छेद कर दिया। नाव को डूबने से बचाने के लिए बरफ़ के किनारे पर ले जाकर उसकी मरम्मत की गई।

१७ जून को यात्री लोग एक कुत्ते का भौंकना सुन कर चौंक पड़े। उन्होंने अनुमान लगाया कि पास में कोई मनुष्य भी अवश्य होगा। अन्त में उन्होंने जैकसन को देखा जो उधर अन्वेषण कर रहा था। जैकसन के विन्डवर्ड जहाज़ में सवार होकर सब लोग १३ अगस्त को (वार्डो) नार्वे पहुंच गये। सात दिन के बाद बरफ़

से लदा हुआ उनका फ्रेम जहाज़ भी वहाँ आ लगा। वीर अन्वेषकों का बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ। फ्रेंम जहाज़ ने अज्ञात समुद्र के ५०,००० मीलों का पता लगाया। इस जहाज़ और स्लेज की यात्रा से नान्सेन ने उत्तरी ध्रुव की खोज बहुत कुछ आसान कर दी।

गुब्बारे से उत्तरी ध्रुव की यात्रा

आर्क्टिक प्रदेश में जुलाई महीने में उत्तर की ओर हवायें चलती हैं। हर एण्ड्री नामी यात्री ने इसी हवा का प्रयोग करके डेन द्वीप से उत्तर की ओर उड़ने का निश्चय किया। वह गुब्बारा उड़ाने में बड़ा चतुर था। इसलिये उसे भरोसा था कि अनुकूल हवा मिलने पर वह कुछ ही दिनों में ध्रुव को पार करके साइबेरिया पहुंच जायगा। गुब्बारे पर चढ़ कर वह नीचे की भूमि को स्पष्ट देख सकता था कि उसके नीचे खुला हुआ जल, स्थल अथवा शाश्वत हिम है।

१८९७ के जुलाई मास में दो साथियों को लेकर उत्तर की ओर उड़े। उनके गुब्बारे में अस्त्र-शस्त्र और

झोपड़ा बनाने का सामान था। एक छोटी सी अलमोनिया की नाव भी थी।

गुब्बारा काफी तेज़ी से उड़ा। ऐसा मालूम होता था कि यह कुछ ही दिनों में साइबेरिया पहुंच जायगा। उड़ते उड़ते कुछ ही समय में वह आंझल हो गया। वर्षों तक इनका पता न चला। इनके बारे में तरह तरह की गप्पें उड़ने लगीं।

स्पिट्सबर्गन से उड़कर ये लोग ८२.५६ उत्तरी अक्षांश तक पहुंच गये। वहां से पैदल चल कर ये लोग गायल्स द्वीप या हाइटलैंड (पूर्वी स्पिट्सबर्गन) को लौट आये। यहीं यह मर गये। कुछ समय के बाद दैनंदिनी (या डायरी) मिली जो अब प्रकाशित हो चुकी है।

लिंकन एल्सवर्थ की दक्षिणी ध्रुव-यात्रा

लिंकन एल्सवर्थ संयुक्त राष्ट्र अमरीका के एक धनी घराने में पैदा हुआ। वह अपना जीवन भोग विलास में बिता सकता था। लेकिन उसने सुदूर देशों के अन्वेषण के लिये कठिनाई का जीवन पसंद किया। येल-विश्व

विद्यालय में शिक्षा समाप्त करने के बाद उसने ग्रांड ट्रंक पेसिफिक रेलवे के प्रथम अन्वेषण का कार्य किया। इसके बाद उसने पश्चिमी कनाडा में अन्वेषण किया। एक वर्ष तक उसने अल्बर्टा और एलास्का में सोने का पता लगाने का काम किया। तीन वर्ष तक उसने राकी प्रदेश में यूकान से लेकर मेक्सिको तक जीवधारियों के नमूने इकट्ठे किये। उसने फ्रांस में एम्बुलेन्स का काम किया। १९१७ में वह हवाई जहाज की सेना में भरती हो गया। उसने प्रशान्त महासागर से एमेज़ान की घाटी तक एण्डीज़ पर्वत का सुन्दर भूगर्भखंडाकार (क्रास-सेक्शन) बनाया। उसने लब्राडार और केलिफोर्निया की मृत्यु घाटी में फासिल अलगाई का पता लगाया। लिंकन एल्सवर्थ ध्रुव प्रदेश की हवाई यात्रा में एमण्ड-सेन का साथी था। उसने उत्तरी ध्रुव के पास हवाई जहाज़ चलाने वाले और इंजीनियर को डूबने से बचाया और १२०,००० मील के विस्तार वाले अज्ञात प्रदेश का पता लगाने में सहायता दी। पहले उसने आर्क्टिक महासागर को हवाई जहाज़ से पार किया। १९३६ में उसने आर्क्टिक प्रदेश को पार किया।

एल्सवर्थ ने पहले उस १७०० मील लम्बे हिम प्रदेश का अन्वेषण करने का निश्चय किया जो रास सागर को वेडेल सागर से पृथक करता है। पहली हवाई यात्रा १६३३ ई० में की गई। सामान और रसद पानी पर चलाने वाले व्याट अर्प नामी जहाज़ पर भेजा गया। पहली यात्रा आरम्भ करने के लिये जहाज़ ६ नवम्बर १६३३ को ड्यूनेडिन (न्यूज़ लैंड) पहुँचा। एक महीना मरम्मत में लगाने के बाद जहाज दक्षिण की ओर चला। २२ दिन में बर्फीले समुद्र को पार करके खुले हुये रास सागर में पहुँचा। ६ जनवरी १६३४ को सब लोग ह्वेल की खाड़ी में पहुंचे। बरफ की खाड़ी पर सब सामान और हवाई जहाज़ उतारा गया।

हवाई जहाज़ का नाम पोलर स्टार (ध्रुवीय तारा) था। यह जहाज़ मज़बूत धातु का बना था। और ३१ फुट लम्बा था। उसमें ६०० हार्स पावर (अश्वशक्ति) का इंजिन लगा था। २३० मील प्रति घंटे की चाल से यह ५००० मील का चक्कर लगा सकता था। उतरते समय इसकी चाल ५० मील प्रति घंटा की जा सकती थी। बरफ के तट पर ऊँची लहरें टकरा रही थीं। इस

लिये हवाई जहाज़ एक मील भीतर की ओर स्थल पर उतारा गया।

इसके बाद आपत्ति आई। जहाज़ से पांच मील की दूरी तक बरफ टूट गई। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था हवाई जहाज़ के कुछ भाग चलती हुई बरफ में चकनाचूर हो गये। ऐसे जहाज़ को उड़ाना निरापद न था। इसलिये यात्रा भंग करनी पड़ी। हवाई जहाज़ मरम्मत के लिये अमरीका भेजा गया।

१९३४ के सितम्बर मास में सब लोग फिर न्यूज़ीलैंड पहुँचे। इस बार वेडेल सागर से रास सागर तक उल्टी दिशा में उड़ने का निश्चय किया गया। आर्क्टिक द्वीप समूह के उत्तरी द्वीप डिसेप्शन द्वीप में उतरे। लेकिन हवाई जहाज़ को उड़ाने के पहले ही नीचे की बरफ पिघल गई। इसलिये अच्छे समय के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ी। प्रतीक्षा के समय को सब लोगों ने पींग्विन के अंडे और दूसरे नमूने इकट्ठे करने में बिताया। अंडे निकालने के लिये घोंसले में टोपी डला अथवा और कोई चीज़ी मादा पींग्विन के बैठने के लिये छोड़ देनी चाहिये। नहीं तो

वह अंडा निकालने वाले का पीछा करती है और पंख मार मार कर उसने तोड़ देती है।

बरफ पिघलने पर ब्यार्ट अर्प जहाज़ दक्षिण की ओर मुड़ा। इधर द्वीप समूह के पश्चिमी तट का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर था। ४४ दिन की यात्रा के बाद स्नोहिल (हिमपहाड़ी) द्वीप का पता लगा। इसकी चट्टानों में १० करोड़ वर्ष के पुराने हड्डी और बनस्पति के नमूने मिले जो समय पाकर पत्थर बन गये थे। इन नमूनों से सिद्ध होता है कि पुराने समय में एण्टार्किटका की जलवायु शीतोष्ण और गरम थी। एक लकड़ी केलिफोर्निया के पेड़ों से मिलती जुलती थी। पड़ोस में स्वीडन के डाक्टर आटो नार्डेन्स्कजाल्ड की कोठरी मिली जिसने १६०२ और १६०३ में इधर यात्रा की थी। इस समय यह नीली बरफ से ढकी थी। यहीं तीन मरे कुत्ते और दूसरा सामान पड़ा था।

इस बार खराब मौसम ने बाधा डाली दो महीनों में केवल १२ घंटे इसे लगातार धूप मिली जब बादल नहीं थे।

३ जनवरी १६३५ को पोलरस्टार हवाई जहाज़

उडने के लिये तयार किया गया। लेकिन कुछ ही दूर आगे बादल घिर गये। कुछ समय नकशा बनाने के बाद सब लोग डेरे पर लौट आये। यहां से दक्षिणी अमरीका होकर हम लोग घर लौटे। पोलर स्टार ने ४८,००० मील पानी के जहाज पर चढ़ कर यात्रा इस उद्देश्य से की थी कि उसे केवल २० घंटे उड़ने के लिये उपयुक्त स्थान मिल जावे। पानी के जहाज़ पर हवाई जहाज़ के अतिरिक्त स्लेज, डेरा, भोजन के बक्स बरफ का फावड़ा और चाकू, बरफ के जूते, प्राइमस स्टोव रेडिओ सेट, बिजली पैदा करने का यन्त्र, चित्र खींचने का सामान और रेनडियर की खाल के बने हुये सोने के थैले लदे थे। भोजन के लिये पेमीकन गेहूँ के बिस्कुट, चीनी, बोलन तिकोने, जई का दलिया, या सुअर का मांस, मक्खन, दूध का आटा और सूखे फल थे। आकस्मिक दुर्घटना के लिये तीन महीने का भोजन थैली और डब्बों में भरा था। तेल (गैसोलिन) आदि सब सामान मिलाकर समस्त वजन ५७ मन था। सब मिलाकर यात्रा मंडली में १७ मनुष्य थे।

इस बार डंडी द्वीप में अड्डा बनाया गया। एण्टा-

क्टिका द्वीप समूह के पूर्वी भाग में ६०० मील उड़ने के बाद एटीफेन्सन प्रणाली पड़ी। १३००० फुट ऊँचे पर्वत के ऊपर उडने के बाद सब लोग अज्ञात महाद्वीप में पहुँचे। इस ओर के पहाड़ प्रस्तरीभूत चट्टानों के बने हैं। सम्भव है इनमें कभी कोयले का पता लगे। जहां हवाई जहाज़ एक ओर हिम से घिरे हुये वेडेल सागर और अज्ञात दुर्गम महाद्वीप के बीच में पहुँचा वहीं सबसे अधिक भयानक यात्रा थी। पहाड़ों के आगे विशाल हिमाच्छादित पठार दिखाई दिया। यहाँ जहाज़ समुद्र तल से १०,००० फुट की ऊँचाई पर उड़ रहा था। १००० मील उड़ने के बाद रेडिओ सेन्ट बिगड़ गया। अभी १३०० मील की यात्रा शेष थी। इस बीच में समाचार न मिलने के कारण बाहर के लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। कुछ आगे बढ़ने पर समतल बरफ को छोड़कर मीलों तक और कुछ नहीं दिखाई देता था। पहले १२० मील से १५० मील तक दूरी तक दृश्य दिखाई देता था। फिर बादलों के घिर आने से अधिक दूर का न दिखाई देने लगा। यहीं एक स्थान (१६-१२ अक्षांश) पर डेरा डाला गया और संयुक्त राष्ट्र अमरीका का झंडा गाड़ा गया। दक्षिणी

ध्रुव यहां से ७५० मील दक्षिण की ओर था। ८० पश्चिमी देशान्तर से १२० पश्चिमी देशान्तर तक ३५०,००० वर्गमील प्रदेश संयुक्त राष्ट्र अमरीका का हो गया। यहां एल्सवर्थ रेशमी और ऊनी कपड़े नीचे पहने था।

ऊन के बाल के कपड़े फलालैन (फ्लेनेल) और रेनडियर की खाल के कपड़े थे। इस समय यहां २४ घंटे सूर्य का प्रकाश रहता था। (इसका भी मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।) लेकिन ताप-क्रम पानी जमने के बिन्दु से १५ अंश नीचे था। यहाँ कुछ समय इस प्रदेश के वैज्ञानिक अध्ययन में बिताया गया।

एक बार लगातार आठ दिन तक बर्फीली आंधी चली। कोई डेरे के बाहर न जा सका। हवाई जहाज़ के पूंछ पर ठोस बरफ जम गई। यदि कहीं इंजिन बिगड़ जाता तो सब लोग संकट में पड़ जाते।

बाद चार घंटे उड़ कर फिर दूसरे तूफान के स्थान पर डेरा डाला गया। यहां से उड़ कर हवाई जहाज़ व्याट अर्प पानी के जहाज़ के पास पहुँचा वह फिर यहां से एल्सवर्थ आस्ट्रेलिया के द्वतीय डिस्कवरी जहाज़ पर

चढ़ कर आस्ट्रेलिया की सरकार का १२ दिन तक अतिथि रहा।

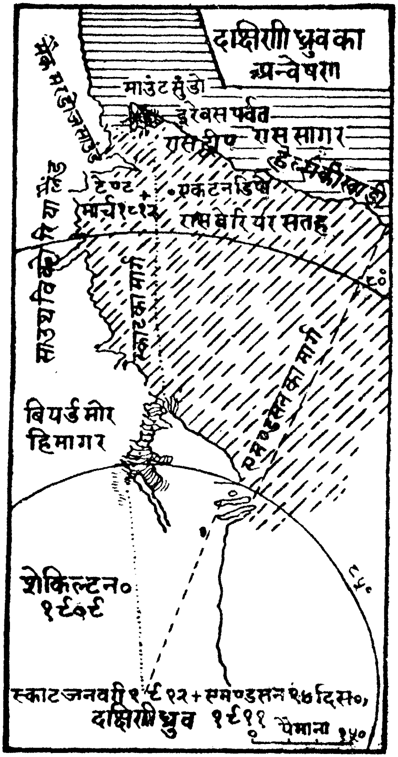
अमरीका पहुंचने पर एल्मवर्थ का बड़ा शानदार स्वागत हुआ। अमरीका की नेशनल ज्याग्राफीकल सोसायटी की ओर से राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने हबर्ड स्वर्ण पदक एल्सवर्थ को प्रदान किया।

रोल्ड एमण्डसेन

रोल्ड एमण्डसेन नार्वे निवासी एक जहाज के मालिक का लड़का था। उसका जन्म १८७२ ई० में हुआ था। उसने क्रिश्चियाना (ओस्लो) विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। १८९० में बी० ए० पास करके उसने दो वर्ष तक डाक्टरी का अध्ययन किया था। पर उसे समुद्र से प्रेम था। अतः १८९४ में उसने जल सेना में नौकरी कर ली। २५ वर्ष की अवस्था में वह अण्टार्क्टिक मंडली का सदस्य चुना गया। वह बड़ा हट्टा कट्टा और ६ फुट लम्बा था। उसका रंग गोरा, बाल भूरे और आंखें नीली थीं। वह बड़ा ही वीर और साहसी था।

१९०३ ई० में ४७ टन के छोटे ग्जोआ जहाज़ को

लेकर मेग्नेटिक उत्तरी ध्रुव का अन्वेषण करने निकला १६ महीने तक वह पूर्वी ग्रीनलैंड (किंग विलियम लैंड)



में रहा। अपने निरीक्षण और अध्ययन से उसने सिद्ध

कर दिया कि मेग्नेटिक ध्रुव अटल नहीं है। वह अपना स्थान बदलता रहता है। इसी समय उसने अटलांटिक से प्रशान्त महासागर में उत्तरी-पश्चिमी बर्फीले मार्ग से प्रवेश किया इस कठिन मार्ग की खोज में सैकड़ों वर्षों से अन्वेषक लगे हुये थे।

एमण्डसेन के लिये यह यात्रा सुगम न थी। मैटी द्वीप के पास उसका जहाज़ ज़मीन से टकरा गया। इसके बाद उसने बड़ी सावधानी से जहाज़ को चलाया। वह उथले पानी के पत्थरों से सदा दूर रहा। प्रधान स्थल और डगलस द्वीप के बीच में उसने पथरीली तली से बचने के लिये जहाज़ को दक्षिण की ओर मोड़ा। गहरा पानी मिलने पर वह पश्चिम की ओर मुड़ा। इस ओर पानी की गहराई सब कहीं ४२ फुट से अधिक थी लिस्टन और सटन द्वीपों के पास होकर डाल्फिन और यूनियन प्रणाली के सामने आया। इस ओर एमण्डसेन और उसके साथियों को १८ घंटे की पहरेदारी करनी पड़ी। २६ अगस्त को बेरिंग द्वीप की नेल्सन अन्तरीप मिली। यहां शायद लोहे की अधिकता है। इसी से कुतुबनुमा में कई बार गड़बड़ी हो गई। यहां की प्रबल

धाराओं में भी मल्लाह घबड़ा जाता है। दूसरी ओर पहुँचने पर एक दूसरा जहाज़ दिखाई दिया। इसे देख कर सब लोग खुशी से उछल पड़े। एमण्डसेन कपड़े पहनकर पहले नान्सेन के चित्र के सामने कुछ देर ठहरा। इसके बाद ग्जोआ जहाज़ पर नार्वे का झंडा फहराया गया। दूसरे जहाज़ पर तारों और धारियों वाला अमरीकन झंडा फहरा रहा था। सब लोग बढ़िया कपड़े पहन कर मिलने के लिये तयार हो गये। कुछ लोगों ने एस्कीमो कपड़े पहने। किसी ने सील की खाल के जूते पहने किसी ने साधारण जहाज़ी जूते पहने। पास आने पर अमरीकन जहाज़ ठहर गया। एमण्डसेन तीन आदमियों को लेकर एक नाव पर उतरा और अमरीकन जहाज़ पर पहुंचा। यह जहाज़ एस्किमो स्त्रियों और हब-शियों से भरा था। पर अमरीकन जहाज़ के कप्तान ने इनका अच्छा स्वागत किया। चलते समय उसने एक बोरा आलू और एक बोरा प्याज एमण्डसेन को भेंट किया। इस तरह के भोग विलास की वस्तु एमण्डसेन और उसके साथियों ने दो वर्ष से नहीं चक्खी थी। यहीं उसे पुराने समाचार पत्र पढ़ने को मिले। एक पत्र

में नार्वे और स्वेडन की लड़ाई का समाचार था। इसे पढ़ कर उसे बड़ी चिन्ता हो गई। इस भेंट के बाद अमरीकन जहाज़ पूर्व की ओर ह्वेल का शिकार करने के लिये बढ़ा। एमण्डसेन का जहाज पश्चिम की ओर सभ्य संसार में आया।

इस यात्रा से लौट कर एमण्डसेन ने फ्रेम जहाज में उत्तरी ध्रुव होकर इस पार से उस पार तक बहने की योजना तयार की। इसी बीच में उसे समाचार मिला कि अमरीकन अन्वेषक पियरी ने उत्तरी ध्रुव का पता लगा लिया है। अतः उसने दक्षिणी ध्रुव का अन्वेषण करने का निश्चय किया। अतः मेडीरा द्वीप के फुञ्चाल बन्दरगाह से उसने अपना जहाज दक्षिण की ओर मोड़ा। इसी समय इंगलैंड, जापान, जर्मनी और आस्ट्रेलिया की ओर से दक्षिणी ध्रुव का पता लगाने की तयारी हो रही थी। इनमें इँगलैंड की ओर से कप्तान स्काट सबसे अधिक सुसज्जित और संगठित था। ब्रिटिश सरकार ने इस कार्य के लिये उसे ३ लाख रुपया दिया था। इतना ही धन उसे जन साधारण के चन्दे से मिला था। एमण्डसेन को अपने १६ अनुभवी साथियों और १००

एस्किमो कुत्तों पर पूरा भरोसा था। एमण्डसेन ने स्लेज गाड़ियों को खींचने के लिये इन्हें चुन चुन कर इकट्ठा किया था।

१९१० ई० में अगस्त मास में नार्वे से प्रस्थान करके दिसम्बर मास में वह रास सागर के तट पर पहुँचा। ह्वेल्स की खाड़ी के किनारे आगे बढ़ने के लिये उसने अपना प्रधान अड्डा बनाया। एक सुरक्षित स्थान पर शीतकाल बिताया गया। अवसर मिलने पर दक्षिण की ओर भोजन सामग्री एकत्रित करने के लिये डिपो बनाये गये। अण्टार्क्टिक प्रदेश में २० अक्टूबर को बसन्त ऋतु का आरम्भ होता है। एण्डसेन इस दिन की प्रतीक्षा कई महीने से कर रहा था। इसी दिन दक्षिणी ध्रुव के लिये प्रस्थान किया गया। पहली मंडली के साथ पांच मनुष्य, ५२ कुत्ते और भोजन आदि सामान से लदी हुई ४ स्लेज गाड़ियां थीं। पहले कुछ दिनों तक भीषण बर्फीली आंधी का सामना करना पड़ा। स्थान स्थान पर बरफ से घिरी हुई गहरी कन्दरायें छिपी हुई थीं। पहली दिसम्बर को असंख्य छेदों और दरारों वाले टूटे फूटे हिमागार की यात्रा का अंत हुआ। इसकी ऊँचाई ९१०० फुट थी। इसके आगे कुहरा और बरफ

से ढका हुआ ऊँचा पठार था। इस पठार के विषम धरातल पर चलना बड़ा कष्टदायक था। बरफ के नीचे खोखली ज़मीन थी। ऐसा जान पड़ता था मानो सब लोग खाली पीपों के ऊपर चल रहे हों। एक स्थान पर एक मनुष्य और दो कुत्ते नीचे गिर गये। इस चिकनी बरफ पर इस्की (शी) का भी प्रयोग नहीं हो सकता था। स्लेज यहाँ के लिये अनुकूल थीं। इस स्थान का नाम शैतान का नाचघर रक्खा गया। इसे पार करने में बड़ी कठिनाई हुई। ६ दिसम्बर को १०७-५० फुट की उंचाई पर एमण्डसेन ८७ अंश ४० मिनट दक्षिणी अक्षांश में पहुँचा। ८ दिसम्बर को तूफानी मौसम का अन्त हुआ। सूर्य फिर दिखाई देने लगा। सूर्य के निरीक्षण और गणना दोनों ही के अनुसार इसदिन एमण्डसेन ८८ अंश १६ मिनट और १६ सेकंड पर पहुंच गया था। उसके आगे समतल पठार था। केवल कहीं कहीं आंधी ने ऊपरी ताजी बरफ में आरवात बना दिये थे। तीसरे पहर (८८ अंश २५ सेकंड) को वह शेकिल्टन की अन्तिम सीमा पर पहुँच गया था। इसके आगे पठार इसकी ओर को धीरे धीरे ढालू हो

गया था। एमण्डसेन १० दिसम्बर को ८८ अंश ५६ मिनट पर और १२ दिसम्बर को ८९ अंश ३० मिनट पर पहुँचा। १४ दिसम्बर को ८९ अश ३० मिनट पर पहुँचा। १४ दिसम्बर (१९११) को तीसरे पहर (तीन बजे) वह ठीक दक्षिणी ध्रुव (९० दक्षिणी अक्षांश) पर पहुँच गया। यह दिन बड़ा सुन्दर था। तापक्रम पानी जमने के बिन्दु से केवल ४१ अंश नीचे था मन्द वायु चल रही थी। मीलों तक यह पठार समान था। एमण्डसेन ने अपने देश (नार्वे) के राजा के सम्मानार्थ इस प्रदेश का नाम हाकोन सप्तम देश (हाकोनलैंड) रक्खा। जब दक्षिणी ध्रुव पर नार्वे का झंडा फहराया गया तब एमण्डसेन और उसके साथियों की आँखें आनन्द और अभिमान से चमक रही थीं। पांचों ने मिल कर झंडा गाड़ा।

एमण्डसेन ने अपने शब्दों में इस दिन का इस प्रकार वर्णन किया है:—

"इस दिन (१४ दिसम्बर को) हम लोग कम सोये, कलेवा भी जल्दी में किया और सवेरे ही अधिक तेज़ी से चल पड़े। दिन सुन्दर था। सूर्य चमक रहा

था। मन्द वायु चल रही थी। हम लोगों ने काफ़ी फ़ासला तय किया। इस दिन हम लोगों ने बहुत बात भी न की। सब के सामने एक ही विचार था एक ही प्रश्न था। क्या हम लोग दक्षिणी ध्रुव पर सर्व प्रथम पहुंचेंगे अथवा पिछड़ जायंगे। अन्त में यात्रा समाप्त हुई निर्दिष्ट स्थान आ गया। इस विशाल पठार पर कहीं भी किसी दिशा में मनुष्य के पैर का चिन्ह न था। यह हम लोगों के लिये बड़ा गम्भीर समय था जब हम लोगों ने हाकोनलैंड में दक्षिणी ध्रुव पर अपने नार्वे देश का झंडा गाड़ा।"

एमण्डसेन और उसके साथियों ने दक्षिणी ध्रुव के समीप कई दिन बिताये १५ दिसम्बर को मंडली के तीन सदस्यों ने १० मील का अर्द्ध व्यास लेकर एक वृत्त बनाया। दूसरे लोग प्रति घंटे अक्षांश का निरीक्षण करते रहे। दूसरे दिन ५ मील और दक्षिण की ओर एक छोटा डेरा लगाया गया। इस स्थान का नाम पोलहीम रक्खा गया। यहां भी नार्वे का झंडा फहराया गया। यहां नार्वे के राजा के नाम से एक चिट्ठी रख दी गई। जो कोई आवे वह यह चिट्ठी नार्वे के राजा

तक पहुंचाने का सम्मान प्राप्त करे। यहीं कुछ कपड़े और वैज्ञानिक यन्त्र छोड़ दिये गये। यहीं एमण्डसेन पांच गैलन पेट्रोल के दो टीन छोड़ने को था। पर अन्त में वे न छूट सके। इनके न छोड़ने का एमण्डसेन को बड़ा दुःख हुआ। यदि यह तेल स्काट और उसके साथियों को यहां मिल जाता तो उनकी जान बच जाती।

दक्षिणी ध्रुव से फ्रेम जहाज तक लौटने की ७५० मील की यात्रा खुशी में और भी तेजी से तय हुई औसत से प्रतिदिन १८ मील तय किये गये। आते समय वे प्रतिदिन १३ मील तय करते थे। आते समय उन्होंने स्थान स्थान पर बरफ के पथ प्रदर्शक स्तम्भ बना दिये थे।

दुर्गम पहाड़ों और भीषण हिमागारों को पार करके जब एमण्डसेन दक्षिणी ध्रुव की शानदार यात्रा समाप्त करके लौटा तो उसका सब कहीं बड़ा मान हुआ। उत्तरी अमरीका, योरुप और आस्ट्रेलिया के लोगों ने उसे व्याख्यान देने के लिये बुलाया। साउथपोल या दक्षिणी ध्रुव नाम की उसकी लिखी हुई पुस्तक का संसार की कई भाषाओं में अनुवाद हो गया।

एमण्डसेन को इस विजय से सन्तोष न हुआ। १९१४ में ध्रुव प्रदेश की यात्रा की उसने दूसरी ओजना तयार की। लेकिन बड़ी लड़ाई के छिड़ जाने से उसे ठहरना पड़ा। १९१८ में उसने फिर उत्तरी ध्रुव की ओर प्रस्थान किया। इस बार उसका उद्देश्य था कि वह इस प्रदेश का वैज्ञानिक अध्ययन करे। वह अपना जहाज़ उत्तर की ओर यथा सम्भव दूरी तक ले गया। यहां उसका मज़बूत जहाज बरफ से जकड़ गया और बरफ के साथ बहता गया। १९ महीने तक संसार को एमण्ड-सेन का कोई समाचार न मिला। इसके बाद १९२० के अप्रैल में वह पूर्वी साइबेरिया में बेहरिंग प्रणाली के पास अनादिर में जा पहुंचा। अपने जकड़े हुये जहाज़ को छोड़ कर सैकड़ों मील की यात्रा उसने स्लेज से की। जुलाई में वह नोम (एलास्का) पहुंचा। १९२६ में हलकी गैस से भरे हुये नार्ज नामी वायुयान (एअरशिप) से ध्रुव प्रदेश में ८००० मील की यात्रा की। हवाई जहाज़ या एरोप्लेन के उतारने के लिये इधर अनुकूल भूमि का पता न था। एअर शिप की चाल धीमी की जा सकती थी और बिना ठहरे एक लम्बी यात्रा की जा

सकती थी। यह नार्ज जहाज रोम में बना था। रोम से लन्दन लेनिनग्रेड होकर नार्ज वायुयान ७ मई को (किंग्स वे) स्पिटसबर्गेन पहुँचा। यहाँ से उत्तरी ध्रुव केवल ८०० मील दूर था। १२ मई को डेढ़ बजे दिन के नार्ज वायुयान ठीक उत्तरी ध्रुव के ऊपर पहुँच गया। वह भूमि के पास (७०० फुट) होकर चक्कर लगा रहा था। सब लोगों को बड़ी खुशी थी। पहले एमण्डसेन ने अपने देश का झंडा उत्तरी ध्रुव पर गिराया। इस बार यह यात्रा संयुक्त राष्ट्र अमरीका, इटली और नार्वे की सम्मिलित यात्रा थी। इसलिये एमण्डसेन के बाद संयुक्त राष्ट्र अमरीका का झंडा गिराया गया। अन्त में इटली के सदस्यों ने अपना झंडा गिराया। इस यात्रा में अधिक आराम था। खाने पीने और पहनने का सभी आराम था। रेडियो से एक जगह का समाचार मिलता था। अध्ययन भी बहुत था। केवल कहीं कहीं बर्फीले तूफानों का सामना करना पड़ा। लेकिन खराब मौसम की सूचना प्रायः पहले ही मिल जाती थी। उत्तरी ध्रुव से नार्ज एलास्का की ओर उड़ा। यहाँ टेलेर नामी एक एस्किमो गांव के पास ऐसा तूफान मिला कि नार्ज को

नीचे उतारना पड़ा। फिर भी ध्रुव की यह हवाई यात्रा सफल रही।

१९२८ की २४ मई को उत्तरी ध्रुव की यात्रा से लौटते समय जनरल नोबिल का इटेलियन हवाई जहाज़ नष्ट हो गया। १७ जून को इसका पता लगाने के लिये एमण्डसेन ने बर्गेन से एक हवाई जहाज पर स्पिट्स बर्गन के लिये प्रस्थान किया। इसके बाद उसका फिर कोई पता न लगा। इस प्रकार परोपकार और अन्वेषण एमेण्डसेन ने वीरगति प्राप्त की।

स्काट की दक्षिणी ध्रुव-यात्रा

दक्षिणी ध्रुव में पहुँचने के लिये सर्वोत्तम मार्ग न्यूज़ीलैंड के दक्षिणी सिरे से जाता है। गरमी की ऋतु में १४०० मील तक समुद्र एकदम साफ रहता है। केवल तूफान और ऊँची नीची लहरों से बाधा पड़ती है। इसके आगे आयसवर्ग (हिमशिलायें) मिलने लगती हैं। एण्टार्क्टिक वृत्त के समीप शीतकालीन बरफ से मार्ग रुक जाता है। शीतकाल में यह बरफ अधिक कड़ी) बड़ी

और दक्षिण की ओर होती है। ग्रीष्म काल में यह हवाओं और धाराओं के साथ अधिक उत्तर की ओर बढ़ आती है। बहते बहते बरफ के टुकड़े अलग अलग हो जाते हैं कहीं वे जुड़ जाते हैं अण्टार्क्टिक प्रदेश में यही बरफ सब कहीं जहाज़ के मार्ग में बाधा डालती है। बहुत समय तक जहाज़ इस प्रकार की बरफ को देखते ही लौट आते थे।

१८४० में ब्रिटिश जलसेना के आदेश से इरेबस और टेरर नामी दो जहाज लेकर कप्तान रास इस ओर आया। न्यूज़ीलैंड के दक्षिण में अंटार्क्टिक वृत्त के पास कप्तान रास को इसी प्रकार की बरफ मिली। २०० मील तक उसके जहाज़ों को बरफ से घिरी हुई जालियों के बीच में संभल संभल कर चलना पड़ा। यह बरफ केवल ६०० मील तक मिली। ६ जनवरी को इस बरफ का अन्त हो गया। लेकिन अधिक आगे एक बरफ की ऊँची शिलायें ४०० मील तक बाधा डालती थीं। कहीं कहीं यह बरफ ८० गज़ ऊँची थी। यह बरफ पूर्व से पश्चिम की ओर चली गई थी। समुद्र के पश्चिम की ओर एक पहाड़ ११००० फुट ऊंचा खड़ा था। दूसरा पहाड़

१३००० फुट ऊंचा था। इसमें दूसरे पहाड़ के मुख से धुआं और लपटें निकल रही थीं। इस प्रकार कप्तानरास ने पता लगाया कि दक्षिणी ध्रुव के पास उजाड़ हिम खंड के ऊपर एक जाग्रत ज्वालामुखी उठा हुआ है।

जिस खुले समुद्र में हिम बाधा (बेरियर) के पास पास रास के जहाज़ चलते थे वह उसकी स्मृति में रास सागर कहलाने लगा। हिम बाधा का नाम रास-बेरियर पड़ गया। जिस द्वीप में दो पहाड़ स्थित थे वह रास द्वीप कहलाने लगा। जहाज़ों की स्मृति में जाग्रत ज्वाला-मुखी का नाम इरेबस पर्वत पड़ गया। दूसरे शान्त ज्वालामुखी पर्वत का नाम टेरर रक्खा गया। जिस स्थल का उसने पता लगाया था उसका नाम महारानी विक्टोरिया के सम्मानार्थ विक्टोरिया लैंड रक्खा गया। पचास वर्ष तक इधर किसी का विशेष ध्यान न गया। इसके बाद ब्रिटिश जलसेना ने राससागर के समीपवर्ती प्रदेश का वैज्ञानिक अध्ययन करने और दक्षिणी ध्रुव का पता लगाने के लिये कप्तान स्काट को भेजा। स्काट के साथ जलसेना के ४० अफसर और सिपाही थे। स्काट के जहाज़ का नाम डिस्कवरी था। यह ठोस सिन्दूर

(ओक) लकड़ी का बना था। केपटाउन के मार्ग से डिस्कवरी जहाज न्यूजीलैंड को आया। यहां उसने १६०१ के बड़े दिन को अंटार्क्टिक प्रदेश के लिये प्रस्थान किया। एक सप्ताह के बाद बरफ के छोटे छोटे टुकड़े दिखाई देने लगे। इसके बाद आयसबर्ग (हिम शिलायें) दिखाई देने लगीं। पींग्विन चिड़ियों का चह-चहाना भी सुनाई देने लगा। अंटार्क्टिक वृत्त के पास ३०० मील तक बरफ की प्रधान बाधा पड़ी। इसको पार करने में एक सप्ताह लग गया। रास सागर में शीत काल बिताने की तयारी की गई। रास द्वीप में शीतकाल के लिए घर बनाये गये और सब सामान उतारा गया। यहीं एस्किमो कुत्तों के रहने के लिये कमरा बनाया गया।

छोटी छोटी टोलियों ने रास द्वीप का अन्वेषण किया। एक मनुष्य मर गया। शेष दूसरे किनारे पर फिसल गये थे और सैकड़ों फुट नीचे पानी में गिरने से ने बाल बाल बच गये।

दक्षिणी ध्रुव के लम्बे शीतकाल में ४ मास (अप्रैल से अगस्त) तक अंधेरा रहा। सूर्य के दर्शन नहीं हुये।

फिर भी प्रत्येक दिन सदस्यों के लिये तरह तरह का काम रहता था मनो विनोद के लिये हबशी नाटक हुआ करता था। शेकिल्टन साउथ पोलर टाइम्स नाम का समाचार पत्र प्रकाशित करता था।

किसी तरह अन्धेरे शीतकाल का अन्त हुआ। अगस्त मास में सूर्योदय होने पर फिर आगे बढ़ने की तयारी होने लगी। शीत काल का निवास-स्थान दक्षिणी ध्रुव से ८५० मील दूर था। दूसरी नवम्बर को प्रस्थान किया गया। डाक्टर विल्सन और शेकिल्टन कप्तान स्काट के साथ थे। उन्होंने स्लेज खींचने के लिये १६ एस्किमो कुत्ते ले लिये। २४ दिन तक भोजन और सामान ढोने वाली मंडली इसी मार्ग से सामान ढोती रही और स्थान स्थान पर अन्वेषकों के लिये इकट्ठा करती रही। कुछ समय तक सब काम ठीक चलता रहा। इसके बाद कुत्ते कमज़ोर होने लगे। जो भोजन कुत्तों को खिलाया जाता था वह उन्हें अनुकूल नहीं पड़ता था। इसलिये कुत्ते आधा ही सामान ढो पाते थे। आधा दूसरे चक्कर में ढोते थे। इस ढंग से बहुत कम (दिन भर में पांच या छ मील) यात्रा हो पाती थी।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के लगातार उदय रहने पर भी यहाँ का तापक्रम पानी जमने के बिन्दु से कई अंश नीचे रहता था। कभी बरफ गिरती कभी बर्फीली आंधी चलती। बरफ (विशेष कर ढीली बरफ) के ऊपर चलने से शीघ्र ही सब का दम फूल आता। कमजोर कुत्ते एक एक करके मरने लगे। कुछ कुत्तों को मार डाला गया और उनका मांस दूसरों को खिलाया गया। ध्रुव की ओर बढ़ने में दो महीने लोग गये थे। फिर भी हिम बाधा (आयस बेरिया) का अन्त नहीं दिखाई देता था। ८२ दक्षिणी अक्षांश में सब लोग पहुंच गये थे। फिर भी ध्रुव ५०० मील दूर था। विवश होकर स्काट ने लौटने का निश्चय किया।

लौटते समय शेक्लिटन की दशा बिगड़ गई। वह सहायता लाने वाले जहाज़ से घर भेज दिया गया। अधिकतर लोग एक वर्ष तक ठहरे रहे। १९०३-१९०४ में स्काट ने फिर दक्षिणी ध्रुव की ओर प्रस्थान किया किया इस बार स्काट पश्चिम की ओर गया। विक्टोरिया लैंड के तट को घेरने वाले पहाड़ को पार करके वह ९००० फुट ऊंचे पठार पर पहुँचा। यहां से उसने

३०० मील भीतर की ओर यात्रा की। १६०४ में सभी लोग स्काट के साथ डिस्कवरी जहाज़ पर चढ़ कर इंगलैंड लौट आये।

१६१० ईस्वी के जून मास में टेरा नोवा नामी स्काटिश जहाज़ पर दूसरी बार ध्रुव प्रदेश की यात्रा आरम्भ की। यह जहाज ह्वेल का शिकार करने के लिये बनाया गया था और बरफ से टक्कर लेने के लिये विशेष रूप से अनुकूल था। ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यजीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका की सरकारों ने धन से स्काट की सहायता की।

न्यूज़ीलैंड पहुँचने पर स्काट को नार्वे के अन्वेषक एमण्डसन का तार मिला। इस तार में उसने सूचना दी थी कि वह भी दक्षिणी ध्रुव प्रदेश की ओर जा रहा है। स्काट के चले आने के कुछ ही समय बाद एमंडसन ने प्रस्थान किया। स्काट अपनी योजना पर अटल रहा। १६११ के नवम्बर मास में स्काट ने दक्षिणी ध्रुव की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। बोझा ढोने का काम टट्टू और कुत्तों से लिया गया। हर ६५ मील के बाद रसद और सामान रखने के लिये डिपो (भंडार)

बनाये गये। दिसम्बर के आरम्भ में सब लोग बियर्ड-हिमागार के पास पहुँच गये। यहां बर्फीली आंधी के कारण उन्हें ४ दिन रुकना पड़ा। टट्टू अपना सब भोजन समाप्त कर चुके थे। उनको गोली से मार दिया गया। कुत्ते जल्द अवश्य चलते थे लेकिन वे उतना बोझा नहीं ले जा सकते थे। ढीली बरफ के ऊपर थोड़ा बोझा ढोने में भी कुत्तों का दम फूल आता था। यात्रियों को स्की (शी) पहननी पड़ती थी। यह लम्बी चपटी लकड़ी होती है और सिरों पर मुड़ी रहती है। इसको पहनने से पैर बरफ में नहीं धँसते हैं। फिर भी दिन भर में कुछ ही मील की यात्रा हो पाती थी। एक दिन तो सब लोग केवल ४ मील चल सके थे। हिमागार का धरातल अधिक अच्छा था। इसलिये अधिक ठंड पड़ने पर भी पन्द्रह-बीस मील की यात्रा हो जाती थी। २५ दिसम्बर को १७ मील की यात्रा हुई। लेकिन इस दिन स्काट का एक साथी ८० फुट गहरे में गिरने से बाल बाल बचा। धीरे धीरे सब साथी पीछे लौटा दिये गये। अन्तिम यात्रा में स्काट के साथ चार साथी और एक स्लेज थी। किसी दिन बर्फीली आंधी में कुछ भी

यात्रा नहीं हो पाती थी। किसी दिन कुछ दूर बढ़ जाते थे। १० जनवरी को दोपहर के समय स्काट दक्षिणी ध्रुव से केवल २० मील दूर रह गया था। उसे आशा थी कि दूसरे दिन वह अवश्य दक्षिणी ध्रुव तक पहुंच जायगा। सन्ध्या के समय स्काट ने एक स्लेज के टुकड़े से बंधा हुआ एक काला सा झंडा देखा। १७ जनवरी १६१२ को स्काट और उसके साथी दक्षिणी ध्रुव में पहुंच गये। यहां एक डेरा मिला। इसमें एक चिट्ठी थी। इस चिट्ठी से विदित हुआ कि एमंडसन और उसके चार साथी एक महीना पहले ही इधर आ चुके थे। उन्हों ने यहां अपना नार्वेजियन झंडा गाड़ा था। ध्रुव तक पहुँचने से स्काठ को प्रसन्नता तो हुई। लेकिन पिछड़ जाने से उसे दुःख भी हुआ।

पिछड़ जाने से स्काट और उसके साथियों की स्थिति संकट में पड़ गई थी। ग्रीष्म काल समाप्ति पर था। सब लोग थके हुये और दुर्बल थे। नियत समय पर डिपो तक न पहुंचने पर उन्हें बड़े संकट का सामना करना पड़ता। फिर भी उन्होंने कोयले, प्रस्तरी भूत चट्टानों और मार्ग के दूसरे नमूने संग्रह करने में कमी न

की इनका बोझ ३५ सेर हो गया था। थके लोगों के लिये यह बोझ बहुत था। स्काट के एक साथी को पाला मार गया। वह बेहोश होकर मर गया। स्काट के पैर भी सुन्न पड़ गये थे। पर वह चलता रहा। दूसरा साथी भी बर्फीली आंधी में चलते चलते मर गया। अब स्काट के केवल दो और साथी बचे। १६ मार्च को स्काट और उसके दो साथी एक टन डिपो से केवल ११ मील दूर रह गये थे। इस डिपो में काफी भोजन और ईंधन रक्खा था। यदि यह लोग यहां तक पहुँच जाते तो अवश्य बच जाते। लेकिन प्रबल बर्फीली आंधी लगातार चलती रही। दूसरे दिन स्काट के पास केवल दो प्याला चाय तयार करने के लिये तेल और कठिनाई से दो दिन के लिये भोजन शेष बचा था। दो दिन बीत गये। पर बर्फीली आंधी का अन्त न हुआ। १६ मार्च से २६ मार्च तक बर्फीली आंधी लगातार वेग से चलती रही। २६ मार्च को स्काट में केवल रेंगने की शक्ति शेष रह गई थी। स्काट की डायरी के अन्तिम शब्द सचमुच हृदय विदारक हैं। अन्त में स्काट और उसके दोनों साथियों का यहीं अन्त हो गया।

अगले अक्तूबर महीने में पता लगाने के लिये जो मंडली इधर आई उसको तीनों की लाशें, डायरी, चट्टानों के नमूने आदि एक डेरे में मिले।

स्काट का अन्तिम सन्देश

यह संकट संगठन के दोष के कारण नहीं आया है। इसका वह दुर्भाग्य है जो जान बूझ कर उठाये हुये जोखिम में पैदा हुआ है। १६११ के मार्च में एक टट्टू के मर जाने से प्रस्थान करने में देरी हुई। इस यात्रा में मौसम लगातार खराब रहा। ८३ अक्षांश का तूफान विशेष रूप से भयानक था। हम लोगों को एकदम आगे बढ़ने से रोक दिया। हिमागार के निचले भाग की ढीली बरफ ने फिर हम लोगों की चाल मन्द कर दी।

हम लोगों ने इन अनिष्टों का वीरता से सामना किया और उन पर विजय पाई। लेकिन हम लोगों की भोजन सामग्री कम होती गई। ७०० मील लम्बी ध्रुव यात्रा में भोजन वस्त्र आदि सामान वितरण की हर एक छोटी छोटी बात ठीक उत्तरी। अग्रिम टोली सामान बचाकर लौट सकती थी। हमारा विश्वास था कि इन्वेस सब से अधिक बलवान पुरुष है। अच्छे मौसम में

बियर्डमोर हिमागार दुर्गम नहीं है। लेकिन लौटते समय हमको एक भी अच्छा दिन नहीं मिला। बीमार साथी ने हम लोगों की चिन्ताओं को और भी अधिक बढ़ा दिया। विषम बरफ में इवैन्स का दिमाग बिगड़ गया। उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई। पर इसके मण्डली को बड़ा धक्का पहुंचा।

बेरियर में जो अकस्मात दुर्घटना हुई उसके सामने ऊपर की घटनायें कुछ भी न थीं। मेरा विश्वास है लौटने के लिये जो प्रबन्ध किया गया था वह पर्याप्त था। इससे अच्छा प्रबन्ध ऐसे समय संसार में और कोई कर नहीं सकता था। ८२ से ८६ अक्षांश तक चोटी पर तापक्रम पानी जमने के बिन्दु से २० से लेकर ३० अंश तक नीचा था। बेरियर में १०,००० फुट नीचे दिन का तापक्रम ८२ अक्षांश में जमने के बिन्दु से २० अंश नीचे और रात का तापक्रम ३७ अंश नीचे रहता था। दिन की यात्रा में हवा सामने से चला करती थी। यह घटनायें अचानक हुईं। हम लोगों का ह्रास इस अचानक आये हुये बुरे मौसम के कारण हुआ है।

मैं सोचता हुआ कि ऐसा बुरा महीना मनुष्यों को

कभी नहीं बिताना पड़ा है जैसा हम लोगों ने बिताया है। अगर दूसरा साथी बीमार न पड़ता तो भी हम लोग इन संकटों को पार कर लेते। तेल और भोजन की कमी और बुरे मौसम ने उस समय हमारा हाल बुरा कर दिया जब अन्तिम डिपो केवल ११ मील रह गया था।

जब एक टन डिपो केवल ११ मील दूर रह गया था उस समय हमारे पास दो दिन का भोजन और एक बार पकाने के लिये तेल था। लेकिन चार दिन तक आँधी ऐसी ज़ोर से चली कि हम डेरे के बाहर न जा सके। हम कमज़ोर हैं। लिखना कठिन है। मुझे अपने लिये इस यात्रा का दुःख नहीं है। इसने दिखा दिया कि अंग्रेज कष्ट सहन कर सकते हैं एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं। दुर्घटनायें हमारे विरुद्ध हुईं। इसकी हमें शिकायत नहीं है। हम दैवी इच्छा के सामने अपना सिर झुकाते हैं। फिर भी अन्त तक हम भरसक प्रयत्न करने का निश्चय रखते हैं।

लेकिन यदि हमने इच्छापूर्वक इस साहस कार्य से अपने देश की प्रतिष्ठा के लिये अपने जीवन का बलिदान किया है तो मैं अपने देशवासियों से अपील करता

(कवर के दूसरे पृष्ठ पर देखिये)

DESH-DARSHAN Regd. No.
July, 1943.

Published by the Editor (Pt. Ram Narain Misra, B.A.)
and Printed by Ram Sundar Dwivedi, at the
Bhugol Press, Kakrahaghat, Allahabad.